महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा

(डा. महेंद्रभटनागर की काव्य-चेतना के विविध रचनाधर्मी आयाम)

1

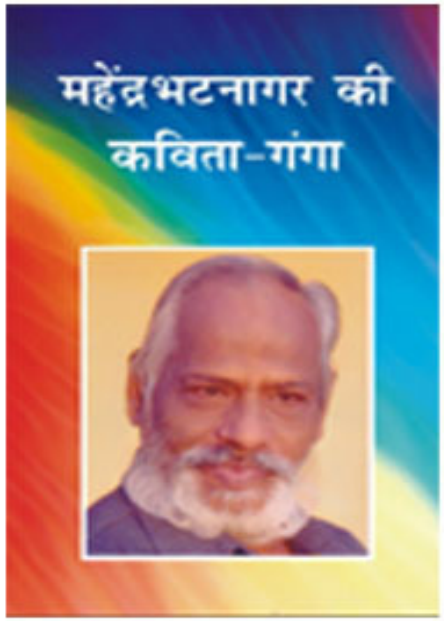

डा. महेंद्रभटनागर की कविता-गंगा /

काव्य-कृतियाँ

1	तारों के गीत	1
2	विहान	17
3	अन्तराल	43
4	अभियान	83
5	बदलता युग	121
6	टूटती शृंखलाएँ	183-250

1

तारों के गीत

रचना-काल सन् 1941 1942

प्रकाशन सन् 1949

कविताएँ

1 तारक
2 जलते रहो
3 तारों से
4 तिमिर-सहचर तारक
5 दीपावली और नक्षत्र-तारक
6 तारे और नभ
7 संध्या के पहले तारे से
8 अमर सितारे
9 उल्कापात
10 ज्योति-केन्द्र
11 नश्वर तारक
12 नभ-उपवन
13 इन्द्रजाल
14 ज्योति-कुसुम
15 जलते रहना
16 शीताभ
17 नृत्त
18 अबुझ
19 प्रिय तारक
20 मेघकाल में
21 जगते तारे

(1) तारक

झिलमिल-झिलमिल होते तारक !
टिम-टिम कर जलते थिरक-थिरक !

कुछ आपस में, कुछ पृथक-पृथक,
बिन मंद हुए, हँस-हँस, अपलक,

कुछ टूटेपर, उत्सर्गजनक
नश्वर और अनश्वर दीपक।

बिन लुप्त हुए नव-ऊषा तक
रजनी के सहचर, चिर-सेवक !

देखा करते जिसको इकटक,
छिपते दिखलाकर तीव्र चमक !

जग को दे जाते चरणोदक
इठला-इठला, क्षण छलक-छलक !

झिलमिल-झिलमिल होते तारक !
1942

(2) जलते रहो

जलते रहो, जलते रहो !

चाहे पवन धीरे चले,
चाहे पवन जल्दी चले,
आँधी चले, झंझा मिलें,
तूफ़ान के धक्के मिलें,
तिल भर जगह से बिन हिले
जलते रहो, जलते रहो !

या शीत हो, कुहरा पड़े,
गरमी पड़े, लूएँ चलें,
बरसात की बौछार हो,
ओले, बरफ़ ढक लें तुम्हें,
आकाश से पर बिन मिटे
जलते रहो, जलते रहो !

चाहे प्रलय के राग में
जीवन-मरण का गान हो,
दुनिया हिले, धरती फटे
सागर प्रबलतम साँस ले,
पिघले बिना सब देखकर
जलते रहो, जलते रहो !

1942

(3) तारों से

तारक नभ में क्यों काँप रहे ?

क्या इनके बंदी आज चरण ?
अवरुद्ध बनी घुटती साँसें
इन पर भी होता शस्त्र-दमन ?
क्या ये भी शोषण-ज्वाला से,
झुलसाये जाते हैं प्रतिपल ?
दिखते पीड़ित, व्याकुल, दुर्बल,
कुछ केवल कँपकर रह जाते,
कुछ नभ की सीमा नाप रहे !

क्या दुनिया वाले दोषी हैं ?
सुख-दुख मय जीवन-सपनों में
जब जग सोया, बेहोशी है,
रजनी की छाया में जगती

सिर से चरणों तक डूब रही,
एकांत मौन से ऊब रही,
जब कण-कण है म्लान, दुखी; तब
ये किसको दे अभिशाप रहे ?

क्या कंपन ही इनका जीवन ?
युग-युग से दीख रहे सुखमय,
शाश्वत है क्या इनका यौवन ?
गिर-गिर या छुप-छुप कर अविरल
क्या आँखमिचौनी खेल रहे ?
स्नेह-सुधा की बो बेल रहे !
अपनी दुनिया में आपस में
हँस-हँस हिल अपने आप रहे !

1942

(4) तिमिर-सहचर तारक

ये घोर तिमिर के चिर-सहचर !

खिलता जब उज्ज्वल नव-प्रभात,
मिट जाती है जब मलिन रात,
ये भी अपना डेरा लेकर चल देते मौन कहीं सत्वर !

मादक संध्या को देख निकट
जब चंद्र निकलता अमर अमिट,
ये भी आ जाते लुक-छिप कर जो लुप्त रहे नभ में दिन भर!

होता जिस दिन सघन अँधेरा
अगणित तारों ने नभ घेरा,
ये चाहा करते राका के मिटने का बुझने का अवसर !

ज्योति-अँधेरे का स्नेह-मिलन,
बतलाता सुख-दुखमय जीवन,
उत्थान-पतन औ' अश्रु-हास से मिल बनता जीवन सुखकर!

1942

(5) दीपावली और नक्षत्र-तारक

दीप अगणित जल रहे !
अट्टालिकाएँ और कुटियाँ जगमगाती हैं
सघन तम में अमा के !
कर रही नर्तन शिखाएँ ज्योति की
हिल-हिल, निकट मिल !
और थिर हैं बल्ब
नीले, लाल, पीले औ' विविध
रंगीन जगती आज लगती !

हो रही है होड़ नभ से;
ध्यान सारा छोड़ कर
मन सब दिशाओं की तरफ़ से मोड़ कर,
इस विश्व के भूखंड भारत ओर
ये सब ताकते हैं झुक गगन से,
मौन विस्मय !
दूर से भग देख कर मग,
मुग्ध हो-हो
साम्य के आश्चर्य से भर
ग्रह, असंख्यक श्वेत तारक !
हो गयी है मंद जिनकी ज्योति सम्मुख,
हो गया लघुकाय मुख !
निर्जीव धड़कन; लुप्त कम्पन !

1942

(6) तारे और नभ

तुम पर नभ ने अभिमान किया !

नव-मोती-सी छवि को लख कर
अपने उर का शृंगार किया,
फूलों-सा कोमल पाकर ही
अपने प्राणों का हार किया,
कुल-दीप समझ निज स्नेह ढाल
तुमको प्रतिपल द्युतिमान किया !

सुषमा, सुन्दरता, पावनता
की तुमको लघुमूर्ति समझकर,
निर्मलता, कोमलता का उर
में अनुमान लगाकर दृढ़तर,
एकाकी हत भाग्य दशा पर
जिसने सुख का मधु गान किया !

1942

(7) संध्या के पहले तारे से

शून्य नभ में है चमकता आज क्यों बस एक तारा ?

जब कि क्षण-क्षण पर प्रगति कर रात आती जा रही है,
चंद्र की हँसती कला भी ज्योति क्रमशः पा रही है,
हो गया है जब तिमिरमय विश्व का कण-कण हमारा !

बादलों की भी न चादर छा रही विस्तृत निलय में,
और टुकड़े मेघ के भी, हैं नहीं जिसके हृदय में,
है नहीं कोई परिधि भी, स्वच्छ है आकाश सारा !

जब कि है गोधूलि के पश्चात का सुन्दर समय यह,
हो गये क्यों डूबती रवि-ज्योति में विक्षिप्त लय यह ?
बन गयी जो मुक्त नभ के तारकों को सुदृढ़ कारा !

1942

(8) अमर सितारे

टिमटिमाते हैं सितारे !

दीप नभ के जल रहे हैं
स्नेह बिन, बत्ती बिना ही !
मौन युग-युग से
अचंचल शान्त एकाकी !
लिए लघु ज्योति अपनी एक-सी,

निर्जन गगन के मध्य में।

ढल गये हैं युग करोड़ों
सामने सदियाँ अनेकों
बीतती जातीं लिए बस
ध्वंस का इतिहास निर्मम,
पर अचल ये
हैं पृथक ये
विश्व के बनते-बिगड़ते,
क्षणिक उठते और गिरते,
क्षणिक बसते और मिटते
अमिट क्रम से
मुक्त वंचित !

कर न पायी शक्ति कोई
अन्त जीवन-नाश इनका।
ये रहे जलते सदा ही
मौन टिमटिम !
मुक्त टिमटिम !
1942

(9) उल्कापात

जब गिरता है भू पर तारा !

आँधी आती है मीलों तक अपना भीषणतम रूप किये,
सर-सर-सी पागल-सी गति में नाश मरण का कटु गान लिये,
यह चिन्ह जता कर गिरता है
तीव्र चमक लेकर गिरता है,
यह आहट देकर गिरता है,
यह गिरने से पहले ही दे देता है भगने का नारा !

हो जाते पल में नष्ट सभी, भू-तरु-तृण-घर जिस क्षण गिरता,

ध्वंस, मरण हाहाकारों का स्वर, आ विप्लव बादल घिरता,
दृश्य प्रलय से भीषणतर कर,
स्वर जैसा विस्फोट भयंकर,
गति विद्युत-सी ले मुक्त प्रखर,
सब मिट जाता बेबस उस क्षण जग का उपवन प्यारा-प्यारा !
1941

(10) ज्योति-केन्द्र

ज्योति के ये केन्द्र हैं क्या ?

ये नवल रवि-रश्मि जैसे, चाँदनी-से शुद्ध उज्ज्वल,
मोतियों से जगमगाते, हैं विमल मधु मुक्त चंचल !

श्वेत मुक्ता-सी चमक, पर, कर न पाये नभ प्रकाशित,
ज्योति है निज, कर न पाये पूर्ण वसुधा किन्तु ज्योतित !

कौन कहता, दीप ये जो ज्योति से कुटिया सजाते ?
ये निरे अंगार हैं बस जो निकट ही जगमगाते !

ये न दे आलोक पाये बस चमक केवल दिखाते,
झिलमिलाते मौन अगणित कब गगन-भू को मिलाते ?
ज्योति के तव केन्द्र हैं क्या ?
1942

(11) नश्वर तारक

इन तारों की दुनिया में भी मिटने का अमिट विधान छिपा !

जीवन की क्षणभंगुरता को
इनने भी जाना पहचाना,
बारी-बारी से मिटना, पर
अगले क्षण ही जीवन पाना,
आत्मा अमर रही, पर रूप न शाश्वत; यह मंत्र महान छिपा !

जलते जाएंगे हँसमुख जब-
तक शेष चमक, साँसें-धड़कन,
कर्तव्य-विमुख जाना है कब,
चाहे घेरें जग-आकर्षण ?
इस संयम के पीछे बोलो, कितना ऊँचा बलिदान छिपा !

हथकड़ियों में बंदी मानव-
सम विचलित हो पाये ये कब ?
अधिकार नहींइनका पग भर
भी बढ़ना है हाय, असम्भव !
चंचलता रह जाती केवल दृढ़ तूफ़ानी अरमान छिपा !
1942

(12) नभ-उपवन

इनके ऊपर आकाश नहीं ।
इस नीले-नीले घेरे का बस होता है रे अंत वहीं !
इनके ऊपर आकाश नहीं !

पर, किसने चिपकाये प्यारे,
इस दुनिया की छत में तारे,
कागज़ के हैं लघु फूल अरे हो सकता यह विश्वास नहीं !

कहते हो यदि नभ का उपवन,
खिलते हैं जिसमें पुष्प सघन,
पर, रस-गंध अमर भर कर यह रह सकता है मधुमास नहीं !
1942

(13) इंद्रजाल

ये खड़े किसके सहारे ?

है नहीं सीमा गगन की मुक्त सीमाहीन नभ है,
छोर को मालूम करना रे नहीं कोई सुलभ है !

सब दिशाओं की तरफ़ से अन्त जिसका लापता है,
शून्य विस्तृत है गहनतम कौन उसको नापता है ?

टेक नीचे और ऊपर भी नहीं देती दिखायी,
पर अडिग हैं, कौन-सी आ शक्ति इनमें है समायी ?

खींचती क्या यह अवनि है ? खींचता आकाश है क्या ?
शक्ति दोनों की बराबर ! हो सका विश्वास है क्या ?

जो खड़े इनके सहारे !
ये खड़े किसके सहारे ?
1942

(14) ज्योति-कुसुम

फूल ही
बस फूल की रे,
एक हँसती खिलखिलाती,
वायु से औ' आँधियों से
काँपती हिलती सिहरती
यह लता है , यह लता है !

देह जिसकी बाद पतझर के
नवल मधुमास के
नव कोपलों-सी,
शुद्ध, उज्ज्वल, रसमयी
कोमल, मधुरतम !

आ कभी जाता प्रभंजन
बेल के कुछ फूल
या लघु पाँखुड़ी सूखी
गँवाकर ज्योति, जीवन शक्ति सारी,
मौन झर जातीं गगन से !

या कभी
जन स्वर्ग के आ,
अर्चना को,
तोड़ ले जाते कुसुम,
इस बेल से,
जो विश्व भर में छा रही है
नाम तारों की लड़ी बन !
1942

(15) जलते रहना

तुम प्रतिपल मिट-मिट कर जलते रहना !

जब तक प्राची में ऊषा की किरणें
बिखरा जाएँ नव-आलोक तिमिर में,
विहगों की पाँतें उड़ने लग जाएँ
इस उज्ज्वल खिलते सूने अम्बर में,
तब तक तुम रह-रह कर जलते रहना !

जैसे पानी के आने से पहले
दिन की तेज़ चमक धुँधली पड़ जाती,
वेग पवन के आते स्वर सर-सर कर
फिर भू सुख जीवन शीतलता पाती,
गति ले वैसी ही तुम जलते रहना
1941

(16) शीताभ

ये हिम बरसाने वाले हैं, ये अग्नि नहीं बरसाएंगे !

जब पीड़ित व्याकुल मानवता, दुख-ज्वालाओं से झुलसायी,
बंदी जीवन में जड़ता है ; जिसने अपनी ज्योति गँवायी,
जब शोषण की आँधी ने आ मानव को अंधा कर डाला,
क्रूर नियति की भृकुटि तनी है, आज पड़ा खेतों में पाला,

त्राहि-त्राहि का आज मरण का जब सुन पड़ता है स्वर भीषण,
चारों ओर मचा कोलाहल, है बुझता दीप, जटिल जीवन,

जब जग में आग धधकती है, लपटों से दुनिया जलती है,
अत्याचारों से पीड़ित जब भू-माता आज मचलती है,

ये दुःख मिटाने वाले हैं; जग को शीतल कर जाएंगे !
ये हिम बरसाने वाले हैं, ये अग्नि नहीं बरसाएंगे !
1942

(17) नृत्त

देखो इन तारों का नर्तन !

सुरबालाओं का नृत्य अरे देखा होगा हाला पीकर,
देखा होगा माटी का क्षण-भंगुर मोहक नाच मनोहर,
पर गिनती है क्या इन सबकी यदि देखा तारों का नर्तन !
युग-युग से अविराम रहा हो बिन शब्द किये रुनझुन-रुनझुन!

सावन की घनघोर घटाएँ छा-छा जातीं जब अम्बर में,
शांति-सुधा-कण बरसा देतीं व्याकुल जगती के अंतर में,
तब देखा होगा मोरों का रंगीन मनोहर नृत्य अरे !
पर, ये सब धुँधले पड़ जाते सम्मुख तारक-नर्तन प्रतिक्षण !
देखो इन तारों का नर्तन !
1942

(18) अबुझ

ये कब बुझने वाले दीपक ?

अविराम अचंचल, मौन-व्रती ये युग-युग से जलते आये,
लाँघ गये बाधाओं को, ये संघर्षों में पलते आये,
रोक न पाये इनको भीषण पल भर भी तूफ़ान भयंकर
मिट न सके ये इस जगती से, आये जब भूकम्प बवंडर !
झंझा का जब दौर चला था लेकर साथ विरुद्ध-हवाएँ,

ये हिल न सके, ये डर न सके, ये विचलित भी हो ना पाए!

ये अक्षय लौ को केन्द्रित कर हँस-हँस जलने वाले दीपक !
ये कब बुझने वाले दीपक ?

1942

(19) प्रिय तारक

यदि मुक्त गगन में ये अगणित
तारे आज न जलते होते !

कैसे दुखिया की निशि कटती !
जो तारे ही तो गिन-गिन कर,
मौन बिता, अगणित कल्प प्रहर,
करती हलका जीवन का दुख।
कुछ क्षण को अश्रु उदासी के
इन तारे गिनने में खोते !

फिर प्रियतम से संकोच भरे
कैसे प्रिय सरिता के तट पर,
गोदी के झूले में हिल कर,
कहती, 'कितने सुन्दर तारक !
आओ, तारे बन जाएँ हम।'
आपस में कह-कह कर सोते !

1941

(20) मेघकाल में

बादलों में छिप गये सब दृष्टि सीमा तक सितारे !

आज उमड़ी हैं घटाएँ,
चल रहीं निर्भय हवाएँ,
दे रहीं जीवन दुआएँ,
उड़ रहे रज-कण गगन में,

घोर गर्जन आज घन में,
दामिनी की चमक क्षण में,
जब प्रकृति का रूप ऐसा हो गये ये दूर-न्यारे !

जब बरसते मेघ काले,
और ओले नाश वाले
भर गये लघु-गहन नाले,
विश्व का अंतर दहलता,
मुक्त होने को मचलता,
शीत में, पर, मौन गलता,
हट गये ये उस जगह से, हो गये बिलकुल किनारे !

1942

(21) जगते तारे

अर्द्ध निशा में जगते तारे !
जब सो जाते दुनिया वासी; जन-जन, तरु, पशु, पंछी सारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !

ये प्रहरी बन जगते रहते,
आपस में मौन कथा कहते,
ना पल भर भी अलसाये रे, चमके बनकर तीव्र सितारे !
अर्द्ध निशा में जगत तारे !

झींगुर के झन-झन के स्वर भी,
दुखिया के क्रन्दन के स्वर भी,
लय हो जाते मुक्त-पवन में चंचल तारों के आ द्वारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !

निद्रा लेकर अपनी सेना,
कहती, 'प्रियवर झपकी लेना'
हर लूँ फिर मैं वैभव, पर, ये कब शब्द-प्रलोभन से हारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !

जलते निशि भर बिन मंद हुए,
कब नेत्र-पटल भी बंद हुए,
जीवन के सपनों से वंचित ये सुख-दुख से पृथक बिचारे !
अर्द्ध निशा में जगते तारे !

1942

●

2

विहान

रचना-काल सन् 19411945

प्रकाशन सन् 1956

कविताएँ

1 जलो-जलो
2 जागो
3 जीवन-दृष्टि
4 बलिपंथी
5 नव-पथ-राही
6 अन्तर्राष्ट्रीय गान
7 युग-गायक
8 अभय
9 युग-कवि
10 जय-बेला
11 शांति-लोक
12 नया संसार
13 क़ैदी
14 तुम
15 उत्सर्ग
16 आशिष्
17 असह
18 अन्तर्बोध
19 प्रतिकूलता
20 आशा-किरण
21 जीवन-ज्वाला
22 निवेदन
23 स्वावलंब
24 समरस
25 सुख-दुख
26 काम्य
27 नयी कला
28 नवयुग
29 प्रात
30 नव-जीवन
31 सन्ध्या
32 बरसात
33 विश्व-कवि
34 हरिजन
35 भिखारिन

(1) जलो-जलो

संघर्षों की ज्वाला में जलो, जलो !

बलिदान-त्यागमय जीवन हो,
कारागृह भी शांति-सदन हो,
जन-हित, बीहड़ पथ पर भी चलो, चलो !

तम से ग्रस्त अवनि ज्योतित हो,
मुरझाया उपवन कुसुमित हो,
मधु-ऋतु के हित युग-हिम में गलो, गलो !

1944

(2) जागो

जागो, हे जीवन जागो !

कूल बढ़े हैं नदियों के,
सोये जागे सदियों के,
मूक-व्यथाएँ खो जाएँ ;
बंदी युग-यौवन जागो !

उत्सर्ग भरे गानों से,
प्राणों के बलिदानों से
त्रस्त-मनुज के उद्धारक ;
हे नवयुग के मन जागो !

चंचल चपला के उर में,
ज्वालागिरि के अंतर में,
जो हलचल ; उसको लेकर ;
जगती के कण-कण जागो !

1944

(3) जीवन-दृष्टि

जीवन में तुमको होना है
श्रमशील अथक उन्मुक्त निडर !

दीपक की लौ को उकसाकर,
पूजा के सामान जुटाकर,
वरदान अमरता का प्रतिपल
मत माँगो रे जड़ पाहन से
गा-गा अगणित वंदन के स्वर !

इतना भी रे क्या पागलपन,
इतनी भी क्या यह मौन लगन,
अर्पित करते मृत-पुतलों को
तन-मन-धन, जीवन-सुख, वैभव
दुनिया के किस आकर्षण पर ?

यह मानवता का धर्म नहीं,
यह मानवता का मर्म नहीं,
संघर्षों से घबराकर जो
सभय पलायन धारण करता
कह, 'मिथ्या जग, जीवन नश्वर'!

जीवन जब है एक समस्या
कर्मों का ही नाम तपस्या,
प्राणों के अंतिमतम पल तक
जग में जमकर संघर्ष करो
बहता जाए जीवन-निर्झर !

1943

(4) बलिपंथी

हम कब पथ में रुकते हैं ?

परिणामों की परवाह न, हम तो कर्मों में तत्पर ;
पल-पल का उपयोग यहाँ, खोने पाये कब अवसर ?
आज़ादी-आन्दोलन में सिर देने वाले सैनिक
अत्याचारों से डर कर कब दुर्बल बन झुकते हैं ?

जब आँधी आती है तब जर्जरता मिट जाती है,
विप्लव होता जब जग में, शांति तभी ही आती है,
ज़ंजीरों को तोड़े बिन हम चैन तनिक ना लेंगे
निज उद्देश्यों के हित, जीवन में सब सह सकते हैं !

1942

(5) नव-पथ-राही

हम नव-जीवन-पथ के राही!
नयी व्यवस्था के संचालक, उन्मुक्त नये युग के मानव,
बहता निर्मल रक्त नसों में,हममें नव-गति,साहस अभिनव

अंतिम पल तक संघर्ष अथक, अपराजित-बल, अक्षय-वैभव,
हम निर्भय, मानव-उद्‌बोधक, राग सुनाते हैं, युग-भैरव,

करते ध्वस्त पुरातन, जर्जर जग में लाकर दुर्दम विप्लव,
शीश हथेली पर रखकर हम बढ़ने वाले निडर सिपाही !
हम नव-जीवन-पथ के राही !

1945

(6) अंतर्राष्ट्रीय गान

हम नव प्राणद संदेश लिए बलिदान सिखाने को आये !

हम परिवर्तन की प्यास लिए,
पीड़ित जग में उल्लास लिए,

नव-नव आशा मधुमास लिए,
युग-गान सुनाने को आये !

विद्रोही का उच्छ्वास लिए,
धू-धू लपटों-सी श्वास लिए,
पर, मानव पर विश्वास किए,
नव विश्व बनाने को आये !
1942

(7) युग-गायक

गीत गाता जा रहा हूँ !

रक्त की संस्कृति मिटाने को सुनाता हूँ नये स्वर,
मैं दिशा भूले जगत को, हूँ चलाता नव डगर पर,
हर मनुज को घोर तम से रोशनी में ला रहा हूँ !

कर रहा हूँ मैं नयी युग-सृष्टि का अविराम चिंतन,
उस नये युग का कि जिसमें है जटिल जीवन न दर्शन,
और जिसको, साँस पर हर, पास अपने पा रहा हूँ !

नग्न, दुर्बल, त्रस्त, पीड़ित, नत, बुभुक्षित जो रहे हैं,
दुःख क्या अपमान कटुतर ही सदा जिनने सहे हैं,
जो तिरस्कृत आज तक, उनको उठाता जा रहा हूँ !
1945

(8) अभय

हैं अमर ये गान मेरे, है अमर मेरी कहानी !

हूँ नये युग का मनुज मैं, बद्ध हो पाया न जीवन,
मार्ग में रुकना कहाँ जब पा रहा युग का निमंत्रण,
यदि बदल पाया ज़माना, है तभी सार्थक जवानी !

तोड़ बंधन, आज जग को मुक्ति के पथ पर चला दूँ,
हर सड़े विश्वास मिथ्या खोद कर जड़ से बहा दूँ,
है यही कर्त्तव्य मेरा, इसलिए ही मुक्त वाणी !

है नहीं भाता मुझे यह, दूर जा दुनिया बसाऊँ,
चाहता अति तार-स्वर से मैं प्रलय के गीत गाऊँ,
प्रतिध्वनित हों हर हृदय में, रागिनी खोये पुरानी !
1945

(9) युग-कवि

विश्व के उस पार की, कवि कौन है जो आज गाता ?

सुन न पड़ती अब अलंकृत रीति-कवि की और वाणी,
मिट चुकी बीते युगों की ईश की कल्पित कहानी,
विश्व ने नव-भावनाओं से नया जीवन रचा है ;
अब विगत युग-भव्यता की, कवि दुहाई दे न पाता !

आज नव-नव गीत मेरे, आज नव-नव गीत जग के
आज नवयुग, आज गतियुग आज हम बंदी न अग के
लुप्त होती हैं व्यथाएँ और खिलते फूल नव-नव
अब न जीवन में अधूरे छोड़ जग अरमान जाता !

झूठ, मिथ्या-कल्पनाओं का नहीं है अब ठिकाना
मिट चुकी हैं पूर्ण जड़ से, अब न उनका है बहाना,
टिक सकीं बातें अरे क्या खोखलीं जो सब तरफ़ से
आज कण-कण ढह चुका है, कौन जो उसको उठाता ?
1944

(10) जय-बेला

विषाद की नहीं क़यामती-निशा,
न डर कि हिल रही है हर दिशा!
उफ़न रहा समुद्र क्रुद्ध हो,

हरेक व्यक्ति बस प्रबुद्ध हो !
दवारि, साथ लो नवीन जल,
दलिद्र है सभी पुराण बल !
1945

(11) शांति-लोक

युद्ध की उद्वेग की अब
त्रस्त घड़ियाँ जा रही हैं !

सकल दुनिया आज उत्सुक
स्नेह से भर नयन दीपक
गर्म स्वागत के लिए ही गीत मीठा गा रही है !

आ रहे सुख के बड़े दिन
आ रहा नव मुक्त-जीवन
आज तो युग-कोकिला मधुमास भू पर ला रही है !
1944

(12) नया संसार

बन रहा इतिहास नूतन
जाग शोषित देख सम्मुख
है नया संसार !

स्वार्थ में जब विश्व सारा डूब हिंसा कर रहा था,
मनुज अत्याचार से था त्रस्त प्रतिपल डर रहा था,
चल पड़ी तब घोर आँधी
और विप्लव ज्वार !

नष्ट जिसमें हो गये सब आततायी क्रूर राक्षस,
और पूँजीवाद तानाशाह की तोड़ी गयी नस,
मुक्त जनता-युग हमारे
सामने-साकार !
1944

(13) क़ैदी

रात्रि के नीरव प्रहर में
बज उठीं कड़ियाँ,
जब कठिन
घड़ियाँ बिताना हो रहा था
याद सहसा आ गयी
खामोश ऐसी रात में ही
एक दिन
वे बज उठी थीं
प्रिय तुम्हारे
पैर की पायल !

आज तो निस्तब्ध काली रात में
दृढ़ लौह-कड़ियों-सीखचों के बीच
रह-रह खनखनाती बेड़ियाँ निर्मम
और बीते जा रहे
भावों-विचारों में
थके-उलझे हुए
कुछ क्षण !
1943

(14) तुम

तुम सहसा आ आलोक-शिखा-सी चमकीं !

जब तम में जीवन डूब गया था सारा,
सोया था दूर कहीं पर भाग्य-सितारा,
तब तुम आश्वासन दे, विद्युत-सी दमकीं !

सूखे तरुवर पतझर से प्रतिपल लड़कर
सर्वस्व गवाँ मिटने वाले थे भू पर,
तब तुम नव-बसंत-सी उर में आ धमकीं !

जब पीड़ित अंतर ने आह भरी दुख की,
जब सूख गयी थीं सारी लहरें सुख की,
तब घन बनकर तुमने नीरसता कम की !
1945

(15) उत्सर्ग

तुमने क्यों काँटे बीन लिए ?

जब हम-तुम दोनों साथ चले
सुख-दुख लेकर जीवन-पथ पर,
कुश-काँटों से आहत उर को
आपस में सहला-सहला कर,
पर, अनजाने में, तुमने क्यों
मेरे सारे दुख छीन लिए ?

आधे पथ तुम ले जाओगी
क्या तुमने सोचा था मन में ?
अंतिम मंज़िल मैं, ले जाता
निर्जन वन के सूनेपन में !
पर, हाय! कहाँ वह मध्य मिला ?
पग सह न सके, गति हीन किये !
1945

(16) आशिष्

मैं लिए हूँ
प्राण की यह रिक्त झोली
माँगता हूँ स्नेह-निर्मल,
देखना बस चाहता हूँ
हाथ ममता का
उपेक्षित शीश पर !

यदि पा गया तो

प्राण में भर वेग दुर्दम
और धुन तूफ़ान-सी लेकर
अभावों को मिटाने
बढ़ चलूंगा !

वेदना-अवसाद के,
अवसान के युग
जाएंगे बन
हर्ष के
उत्थान के क्षण !
1941

(17) असह

अब न रहा जाता !

प्रिय दूभर जीना ;
मूक हृदय-वीणा,
आघात समय का
अब न सहा जाता !

करुण कथा कितनी,
गरल व्यथा कितनी,
लय में छंदों में
अब न कहा जाता !

जीवित नेह कहाँ ?
सुन्दर गेह कहाँ ?
मन दुख-सरिता में
अब न नहा पाता !

हैं मौन सुखद स्वर,
जीवन शांत लहर,

बीहड़ पथ से रे
अब न बहा जाता !
1945

(18) अन्तर्बोध

जब-जब मैंने सोचा मन में
क्या सार रखा है जीवन में ?
है जब क़दम-क़दम पर फिसलन
औ' अपमान, व्यथाएँ, बंधन ;
पर, मिटने की जब-जब ठानी
मम वसुधा-सम प्राण न माने !

इति का कहना क्या, जब अथ में
दुख-ही-दुख है जीवन-पथ में,
शूलों का अम्बार लगा है,
कटुता का बाज़ार लगा है,
पर, रुकने की जब-जब ठानी
मम ध्रुव-सम ये प्राण न माने !
1945

(19) प्रतिकूलता

स्नेह हीन जीवन-दीपक की
होती जाती है ज्योति मंद !

मिलती प्रतिपग पर असफलता,
बढ़ती जाती है व्याकुलता,
जीवन-सुख के सब द्वार बंद !

जड़ता का अँधियारा छाया,
बरखा-आँधी का युग आया,
हलचल प्रतिपल अन्तर्द्वन्द्व !
1945

(20) आशा-किरण

जीवन में
प्रतिकूल समय के
कुटिल प्रहारों को
सहने दो !

गत जीवन के
रंग-बिरंगे, मधुमय
सपनों के चित्रों को
मत देखो,
मत सोचो उन पर
दूर कहीं
विस्मृत-सागर के तल में
बहने दो !

एक समय आएगा ऐसा
जब सुख की बरखा होगी,
दुख की खेती मिट जाएगी !
जो इस आशा पर हँसते हैं
उनको हँसने दो !
1941

(21) जीवन-ज्वाला

यह मम जीवन-ज्वाला इसको
तुम धू-धू स्वर में गाने दो !

प्राणों के सारे अशिव-भाव
इस ज्वाला में जाएंगे जल,
जीवन के राग-विराग सभी
इसमें हो जाएंगे ओझल,
मन को कलुषित करने वाला

धूम्र विषैला उड़ जाने दो !

आँसू मत लाना, आँसू से
ज्वाला ठंडी पड़ जाएगी,
आहें मत भरना; आहों से
वह सीमित ना रह पाएगी,
इसको तो प्रतिपल जीवन के
सम्पूर्ण गगन में छाने दो !

1941

(22) निवेदन

अभिशाप भले ही दे दो, पर
वरदान नहीं देना मुझको !

जब सविता जैसा चमक पड़ूँ,
जब मधुघट बनकर छलक पड़ूँ,
तब लघुता मुझमें भर देना,
अभिमान नहीं देना मुझको !

मूक ग़रीबी का साया हो,
जब सुख माया-ही-माया हो,
संघर्षों में मिटने देना,
पर, दान नहीं देना मुझको !

1945

(23) स्वावलंब

मैं बुझते दीपक का न कभी
धूमिल नीरव उच्छ्वास बना !

जीवन के कितने ही भ्रम में,
भूला न कभी अपने क्रम में,
मैं तो अविरल बहने वाली

सरिता के उर की साँस बना !

मैं अपना ख़ुद पतवार बना,
मैं अपना ख़ुद आधार बना,
निज की निर्भरता पर रखता
अविचल जीवित विश्वास घना !

1945

(24) समरस

मैंने आज न पहले भी अपने पर अभिमान किया !

जब जीवन-नभ में चमका
मैं स्वर्ण-सितारा बन कर,
सब की मुझ पर आँख उठी
देखा जब ऐसा अवसर,
पर, मैंने न कभी अपने क्षणिक-सुखों का गान किया !

अंतर में समझा होता
इस उन्नति का मूल्य अगर,
गर्वीली रेखाएँ आ
बरबस छा जातीं मुख पर,
पर, लोचन झुक-झुक जाते, सुन मैंने बलिदान किया !

1944

(25) सुख - दुख

सुख-दुख तो मानव-जीवन में बारी-बारी से आते हैं !
जो कम या कुछ अधिक क्षणों को मानव-मन पर छा जाते हैं !

मानव-जीवन के पथ पर तो संघर्ष निरंतर होते हैं,
पर, गौरव उनका ही है जो किंचित धैर्य नहीं खोते हैं !

यह ज्ञात सभी को होता है, जीवन में दुख की ज्वाला है,
यह भास सभी को होता है, जीवन मधु-रस का प्याला है !

हैं सुख की उन्मुक्त तरंगें, तो दुख की भी भारी कड़ियाँ,
ऊँचे-ऊँचे महल कहीं तो, हैं पास वहीं ही झोंपड़ियाँ !

कितनी विपदाओं के झोंके आते और चले जाते हैं !
कितने ही सुख के मधु-सपने भी तो फिर आते-जाते हैं !

क्या छंदों में बाँध सकोगे जन-जन की मूक-व्यथाओं को ?
औ' सुख-सागर में उद्वेलित प्रतिपल पर नव-नव भावों को ?
1941

(26) काम्य

ओ मेरे मन ! तुम आकांक्षाओं के भंडार बनो,
नव-नव स्वस्थमना इच्छाओं के रे आगार बनो !

जीवन में प्रतिपल मादकता हो, गति हो, सिहरन हो,
अंतर में जीने का नव-उत्साह भरा कंपन हो !

रुद्ध अचेतन कुण्ठित हो न कभी भावों की सरिता,
प्राणों की वेगवती बहती जाये जीवित कविता !

अनुभव हो न कभी जीवन में हृदय शिथिल होने का,
अवसर आये न कभी असमय संयम-बल खोने का !

भाग्य अधीन नहीं हो किंचित विस्तृत भावी का पथ
संघर्षों में ही बढ़े अथक प्रतिपल जीवन का रथ!
1944

(27) नयी कला

नूतन गति दो आज कला को !

ओ कवि ! निकले तेरे उर से
स्वर नव-युग के नव-जीवन के,

शांति-सुधा की मधु-लहरों-से
कल-कल निर्झर मधुर स्वरों-से
विश्व नहाता जिनमें जाये
मुसकान मधुर मानव पाये
झूम-झूम कर मस्ती में भर
सुन्दर-सुन्दर कहता जाये

दो नूतन स्वर, नूतन साहस
दो मस्ती का राज कला को !
नूतन गति दो आज कला को !
1944

(28) नवयुग

रेशमी युगीन-तार हैं नये-नये !
ज़िन्दगी नयी
अकाम भाव बह गये !

समाज से विलीन हो रही है पीर,
कंटका-विहीन हो रहा करीर

डाल-डाल स्वस्थ गुदगुदी
शुष्कता हृदय से हो चुकी जुदी !

देव-देव आज व्यक्ति हर
कर गया निडर निनार पान विष प्रखर !
यातुधान है वही कि जो
ज़रा अड़ा, ज़रा लड़ा
आग देखकर भगा, डरा....

है विदीर्ण अब प्रमाद
क्योंकि बन गया नवीन !

व्यर्थ आज उस मनुष्य का प्रयास
गर्व की पुकार
व्यर्थ, व्यर्थ, व्यर्थ !
1945

(29) प्रात

पवन के साथ भर कर डग
करो पूरा असीमित मग
दिखो वरदान-से दीपित
दिशाएँ हो सकल ज्योतित,
सबेरा आ, सबेरा आ !

बसेरा अब नहीं तेरा
उठा अपना सभी डेरा,
किरण-भय से बिना स्वर कर
अभी उलटे चरण धर कर
अँधेरा जा, अँधेरा जा !
1944

(30) नव-जीवन

गा रहा मधु-गान निर्झर !

आज सरि की हर लहर में नृत्य की गति-लय मनोहर,
सृष्टि की आभा नयी बन निखरती जाती निरन्तर,
गा रहा मन गीत सुन्दर
भावनाओं से हृदय भर
कल्पनाओं से हृदय भर !

दे रहा वरदान कण-कण !
वेदना-दुख को मिटाकर स्वर्ण का संसार आया,
विश्व के दुर्बल हृदय में शक्ति का सागर समाया,
गूँजता स्वर नभ-अवनि में

आज आया मुक्त-जीवन
आज भाया मुक्त-जीवन !
1944

(31) संध्या

नीला-नीला व्योम कि जिसमें छाये कुछ काले-काले घन,
संध्या की बेला है जगती का सूना-सूना-सा आँगन !

चरती भैंसें मैदानों में, कुछ मेड़ों-खेतों के ऊपर,
धीरे-धीरे बजता है गति के क्रम से घंटी का मधु-स्वर !

आँख-मिचौनी खेल रहे हैं मेघ निकट जा-जा सूरज के,
उड़ता लंबी पाँति बनाकर बगलों का दल-बल सजधज के!

कवि ऊँचे टीले पर बैठा दिन का ढलना देख रहा है,
प्रकृति-वधू का चुप-चुप तन से वस्त्र बदलना देख रहा है!
1943

(32) बरसात

सांध्य का वातावरण धूमिल गहन तम में
छिप गया दिन भी शिशिर-सा शुष्क-मौसम में !

तप्त धरती पर उमड़कर छा रहे बादल
बह रहीं मोहक बयारें सिंधु से शीतल !

ताप में अब डूबती घड़ियाँ बिताओ मत
त्रस्त हो आकाश में आँखें लगाओ मत,

दूर दक्खिन से नयी बरसात आयी है
यह तभी बिजली गगन में चमचमायी है !
1945

(33) विश्व-कवि

तंरगों में पवन के,
युग-अँधेरे में
सिहर कर स्वर सभी थे मौन
जिस क्षण
विश्व कवि की रुक गयी थी श्वास !

होता था नहीं विश्वास
मुख पर था वही ही तेज
जीवन-साधना आभा
नहीं थीं शोक-रेखाएँ,
मनुज-उर भव्यता की
मधु-सरल मुसकान छायी थी।

दिये संसार को जिसने सबल स्वर
मुक्त गीतों का अतुल भंडार
ऐसे गीत जो हैं प्रति निमिष गतिवाह,
करते दूर उर का दाह,
हर निर्जीव तन में रक्त नूतन
कर रहे संचार,
नव-संदेश-वाहक !

कर रहे हर प्राण का उत्थान !
संस्कृत मानवी उत्थान !
1941

(34) हरिजन

नगर के एक सिरे पर हरिजन-बस्ती। सीकों की अनेक झाड़ू और टोकरियाँ दरवाज़ों के आसपास पड़ी हैं।गरमी में समस्त वायुमंडल तप रहा है। कुछ हरिजन अपनी कुटियों से बाहर निकलकर पेड़ के नीचे बैठे हैं, जिनमें औरतें, बुड्ढ़े-बालक व जवान सभी हैं। शहर में आज इनकी हड़ताल है। आज कुचले हुए सिरों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठायी है

एक युवक

(पड़ा-पड़ा गुनगुनाता है)
बीत चुके हैं चार दिवस
हम गये नहीं अपने कामों पर
दृष्टि नगर के जन-जन की
हम पर ही आज लगी है,
क्योंकि नहीं है काम हमारा
औरों के बलबूते !
वर्तमान जीवन के
अभिन्न अंग बने हम,
आज हमारे बिना हुआ
रहना सभ्य मनुजता का
कठिन
असम्भव !

युवक की माँ

रहने दे रे
कुछ न चलेगी तेरी
यों ही कहता फिरता है,
पढ़ आज गया जो थोड़ा-सा
उसके बल
महल हवाई गढ़ता रहता है !
वाचाल ! तुझे क्या पता नहीं
तेरे पुरखे सारे
इनके ही सूखे टुकड़ों पर
पलते आये हैं
पलते जाएंगे !
क्यों कब्र खोदना चाह रहा अपनी
सब की !

युवक

तू क्या जाने जग की आँधी
है साथ हमारे वह गांधी
जिससे 'गोरे' तक डरते हैं

अत्याचार नहीं करते हैं
जिसके पीछे हिन्दुस्तान
करोड़ों इंसान !

युवक का दादा

पर, यह कह देने से
क्या होता है ?
हम तो हैं अब भी
दबे, दुखी औ' दीन पतित !
बाबू लोगों की गाली के
गुस्से के
एकमात्र इंसान
क्या ?
ना रे इंसान
कहाँ इंसान ?
कुत्तों से भी बदतर !

युवक

यह कैसे कहते हो, दादा !
चाल ज़माना चलता जाता
हम भी क़दम-क़दम बढ़ते जाते

मंदिर सारे
आज हमारे लिए खुले हैं !

वृद्ध

मंदिर आज हमारे लिए खुले हैं
तो क्या उनको लेकर चाटें ?
उनसे न मिलेगी
रहने क़ाबिल आज़ादी !
भगवान हमारा यदि साथी होता
तो क्या इस जीवन से
पड़ता पाला ?
मंदिर तो धनिकों के

ऐयाशी के अड्डे हैं !
तू क्या जाने !

युवक

बस, चाह रहा मैं यह ही तो
समझ सकें हम इन सबका
नंगा रूप
कि बाहर आएँ
युग-युग के बंदी अंध-कूप से
फिर कौन बिगाड़ सकेगा अपना
(कुछ रुक कर)
ऊपर उठ जाएंगे,
नव-जीवन पा जाएंगे !

दूसरा युवक

देखो, सचमुच
कितना बदला आज ज़माना,
चारों ओर सहानुभूति का
और मदद का
धन से, तन से, मन से
मचा हुआ है आन्दोलन !

वृद्ध

ये पंडित पोथीवाले
लाल तिलक वाले
पगड़ी वाले लाला लोग
कि जो रोज़ लगाते मोहन-भोग
आज हमारे जानी दुश्मन !
इनने ही बरबाद किया है जीवन !

माँ

उफ़्, न कहो
है लंबी दर्द भरी
युग-युग की करुण कहानी !

क्या होता याद किये से
बीती बातें व्यर्थ-पुरानी !

पार्श्व से

उठो ! पीड़ित, तिरस्कृत
आज युग-युग के सभी मानव,
जगाता है तुम्हें
नूतन जगत का अब नया यौवन !
अमर हो क्रांति
मानव-मुक्ति की नव-क्रांति !
1942

(35) भिखारिन

सावन की घनघोर घटाएँ उमड़ी पड़ती थीं अम्बर में,
काशी के एक मुहल्ले में, मैं बैठा था अपने घर में !

ऊपर की मंज़िल का कमरा था शांत ; परंतु किवाड़ खुले,
सूख रहे थे छाँह-गोख में कुछ धोती-कपड़े धुले-धुले।

सघन तिमिर की चादर ने छा सारी वसुधा ढक डाली थी,
पर, थोड़ी-सी ज्योति गोख ने दीपक के कारण पा ली थी!

धोती की फर-फर की आहट ने ली दृष्टि खींच जब सहसा,
नेत्र गड़े-से, स्वर मौन रहे, उस क्षण की देख अजीब दशा!

करुणा की प्रतिमा-सी युवती चुपचाप खड़ी थी मुख खोले,
जिस पर थीं भय की रेखाएँ, सोच रही थी, क्या वह बोले !

फटी-पुरानी साड़ी उलटे पल्ले की पहने थी नारी,
बिखरे-बिखरे सूखे केशों पर सुन्दरता थी बलिहारी !

श्याम-वर्ण था, कोकिल से भी मीठी थी जिसकी स्वर-लहरी,

वह बोल उठी हलके स्वर में भरकर व्यथा हृदय में गहरी

कुछ ही महिने बीते मुझको बाबू बंगाला से आये
अन्न अकाल पड़ा था भारी, था जीना दुर्लभ बिन खाये,

भूख-भूख की इस ज्वाला में सारा परिवार विलीन हुआ,
घर का धन क्या, शिशुओं तक को बेचा, उर ममताहीन हुआ!

जीवन के दुख-दुर्गम पथ पर नश्वर काया की अनुरागिन,
हाय रही जाने क्यों जीवित अब तक मैं ही एक अभागिन !

कुछ पैसों की भिक्षा को अब फिरती हूँ नगर-नगर घर-घर,
ऊब चुकी हूँ इस जीवन से सचमुच, जग में रहना दूभर !

कुछ दे दो ओ बाबू ! तुम भी दुनिया में खूब फलो-फूलो !
भूखी और दुखी आत्मा की यही दुआ है, सुख में झूलो !'

फिर वह दुखिया आँसू भर कर इतना कह बैठ गयी थक कर,
मैं सोच रहा था, दुनिया भी क्या है नग्न विषमता का घर !

मेरे उर में जाग उठी थी जीवन की उत्कट अभिलाषा,
पूछूँ इसका पूरा परिचय बतला देगी, थी कुछ आशा।

फिर लिखने को युग की गाथा मिल जाएगा सच्चा जीवन,
मिल जाएगा अवसर, करने युग की हीन दशा का चित्रण।

जाने कितने दिन की होगी भूखी-प्यासी यह सोच तनिक,
मैंने सोचा इन बातों को अच्छा हो टालूँ सुबह तलक।

फिर उसको भोजन-आश्रय दे मैं भी सोने तत्काल गया,
एक प्रहर इस उलझन में ही बीता कब होगा प्रात नया।

सुबह-सुबह उठकर जब देखा, केवल पाया अबला का शव,
इसी तरह दम तोड़ रहे हैं जग में जाने कितने मानव !

उसको कोई जान न पाया, कितना करुण अकेला जीवन,
कहना,सचमुच, यह मुश्किल है कितना मर्मान्तक था वह क्षण!
1944

3

अन्तराल

रचना-काल सन् 19441949
प्रकाशन सन् 1954

कविताएँ

1 गन्तव्य की ओर
2 साधना
3 स्नेह-सुधा-जल ...
4 जीवन-पथ के राही से
5 संघर्ष
6 दीप
7 मनुज-जीवन
8 धोखा हुआ
9 साधना का मर्म
10 जीवन-तरु
11 रे मन !
12 आँसुओं का मोल
13 बहने देना ...
14 चुनौती
15 विनाश
16 विकास
17 जागरण
18 रस-संचार
19 वरदान
20 परिवर्तन
21 पतझर और बसंत
22 प्रभात की चाह
23 प्रभात
24 री हवा !
25 रात
26 ढलती रात
27 मेघों से
28 घटाएँ
29 जल-वृष्टि
30 दीपक
31 एकाकीपन
32 साथी से
33 गाओ गीत
34 तुम
35 तुम्हारी माँग का कुंकुम
36 प्रतिदान
37 तुम्हारी याद
38 याद

39 साथ न दोगी ?
40 प्रतीक्षा में
41 परिणाम
42 उन्मेष
43 कामना
44 जीवन का अभिनय
45 नहीं है ...
46 सत्य
47 वेदना
48 अभी नहीं
49 जलदी करो
50 जीवन-धारा

(1) गन्तव्य की ओर

ध्येय पहुँचने की तैयारी !

कितना बीहड़ दुर्गम रे पथ,
उलझ-उलझ जाता जीवन-रथ,
पर, रोक नहीं सकती मेरी गति को कोई भी लाचारी !

माना झंझा मुझको घेरे,
पर, चरण कहाँ डगमग मेरे ?
किंचित न कभी विपदाओं के सम्मुख मैंने हिम्मत हारी !

इस जीवन में कितनी हलचल,
बिखरा मिलता है गरल-गरल,
साधन हीना, संबल हीना, पर संघर्ष किये हैं भारी !

इस पथ पर चलना बड़ा कठिन,
इस पथ पर जलना बड़ा कठिन,
जो इस पथ पर टिक पाया, वह केवल जीने का अधिकारी !
1945

(2) साधना

आशा में घोर निराशा को आज बदलना सीख रहा हूँ !

दुख की निर्मम बदली में यह दीप जलेगा कब तक मेरा,
मौन बनी सूनी कुटिया में प्यार पलेगा कब तक मेरा ?
आते हैं उन्मत्त बवंडर, पागल बन तूफ़ान भयंकर,
रोक सका क्या ? बुझने का क्षण और टलेगा कब तक मेरा ?
तीव्र झकोरों में झंझा के पल-पल जलना सीख रहा हूँ !

कितने ही अरमान दबाए, नव-जीवन की प्यास लिये हूँ,
भूला-भटका, अनजाना-सा आँसू का इतिहास लिये हूँ,

अपने छोटे-से जीवन में अविचल साहस-धैर्य बँधाए,
मिटी हुई अभिलाषाओं में मिलने का विश्वास लिये हूँ,
शून्य डगर पर मैं जीवन की गिर-गिर चलना सीख रहा हूँ!

मत बोलो मैं आज अकेला स्वर्ग बसाने को जाता हूँ,
मौन-साधना से अंतर को आज जगाने को जाता हूँ,
रज-कण से ले उन्नत भूधर तक सुन कंपति हो जाएंगे;
अपने आहत मन को फिर से आज उठाने को जाता हूँ,
निर्मम जग के भारी संघर्षों में पलना सीख रहा हूँ !

मत समझो मुझमें ज्वालाओं का भीषण विस्फोट नहीं है,
तूफ़ानों के बीच भँवर में आँचल तक की ओट नहीं है,
मत समझो, अगणित उच्छ्वासों का भी मूल्य नहीं कुछ मेरा
कौन जानता ? इस अंतर में असफलता की चोट नहीं है,
दुर्गम-बीहड़ जीवन-पथ के कंटक दलना सीख रहा हूँ !
1944

(3) स्नेह-सुधा-जल....

स्नेह-सुधा-जल बरसा दूंगा, टूटी-फूटी दीवारों में !

मैं सुन्दर विश्व सजा दूंगा,
मैं सुखमय स्वर्ग बसा दूंगा,
जीवन-संगीत सुना दूंगा,
हृद्-पीड़क शत-शत बंधन में, जकड़े युग के प्राचीरों में !

नृत्य मनोहर रुनझुन-रुनझुन,
गुञ्जित कर संसृति का कण-कण,
प्राणों में भर जीवन-धड़कन,
सरगम का मधु-स्वर भर दूंगा काली-काली ज़ंजीरों में !

जन-उर में द्रोह उठा दूंगा,
यौवन का तेज जगा दूंगा,

उन्नति की राह बता दूंगा,
मूक अभावों के जीवन में, घोर निराशा में, हारों में !
1949

(4) जीवन-पथ के राही से

बंधनों में, हार में रोना नहीं, रोना नहीं !

राह है यह ज़िन्दगी की एक पल रुकना न होगा,
देख सीमाहीन पथ को बीच में थकना न होगा,
ज्वार उठता हो उदधि में, मृत्यु-मुख में प्राण जाएँ,
गाज गिरती हो अवनि पर या दहलती हों दिशाएँ,
पर, हृदय-साहस कभी खोना नहीं, खोना नहीं !

हो अँधेरी रात चाहे, घोर गर्जन हो प्रलय का,
घेर ले झञ्झा भयानक, नृत्य हो चाहे अनय का,
मानकर चलना कि साथी हैं सभी झोंके भयंकर
ले चलेंगे पार फर-फर व्योम-पथ से जो उड़ा कर,
एक पल भी भय-ग्रसित होना नहीं, होना नहीं !
1949

(5) संघर्ष

छाया सघन अँधेरा पथ पर
लगता एकाकीपन दूभर,
झञ्झा के उन्मत्त प्रहारों से
होता प्रखर विध्वंसक स्वर,
नव बल संचित हो प्राणों में
संघर्ष प्रकृति से नया-नया !

मंज़िल है बेहद दूर अभी
और अपरिचित मार्ग पड़ा है,
लक्ष्य ओर प्रेरित चरणों का
गतिमय संयम बड़ा कड़ा है,

राह विषम, प्रति निमिष मनुज का

शून्य गगन में प्रलय-बाढ़ से
घिरते जाते बादल के दल,
प्रत्यावर्तन दुर्बलता है
चलना ही है जीवन केवल,
घन गर्जन, चपला नर्तन है
1945

(6) दीप

दीप, तुम्हें तो जलना होगा !

नभ के अगणित टिमटिम तारे,
जग के कितने जीवन-प्यारे,
बारी-बारी से सो जाएंगे,
सपनों का संसार बसाए
दीप, तुम्हें पर जलना होगा !

तूफ़ान मचेगा जब जग में,
गहरा तम छाएगा मग में,
जब हिल-हिल जाएंगे भूधर,
डोल उठेगा भूतल सारा
दीप, तुम्हें तब जलना होगा !
1945

(7) मनुज-जीवन

क्या यही है मनुज-जीवन ?

मन दुखी है इसलिए तुम
मौन-स्वर में रो रहे हो,
हो रहे बेचैन इतने
आश सारी खो रहे हो,

पर, कभी मिलता सरस सुख, हँस लिया करते उसी क्षण !

हाथ अपने यदि चलाते
तो चलाते बंधनों में,
है नहीं तेज़ी तनिक भी
अब मनुज-उर-धड़कनों में
सत्य, शिव, सुन्दर कहाँ ? जीवन लिए है घोर उलझन !

कर न सकता न्याय कोई
स्वार्थ में जकड़ा हुआ जग,
बढ़ रहीं अगणित व्यथाएँ,
है मधुर जीवन न प्रतिपग,
हो गया है आदमी का आज तो पाषाण का मन !
1946

(8) धोखा हुआ

धोखा हुआ, धोखा हुआ !

मैं राह चलता गिर पड़ा,
था बीच में पत्थर पड़ा,
यह सोच कर बढ़ता गया
'चलते रहो, चलते रहो !'
धोखा हुआ, धोखा हुआ !
बदली गगन में छा गयी,
आँधी प्रलय की आ गयी,
अंधे नयन को कर दिये,
यह सोचना, 'लड़ते रहो !'
धोखा हुआ, धोखा हुआ !

अब भावना से उठ रहा,
कर सत्य का अनुभव कहा
'धरती बनाओ फिर चलो !'

आवेश के आधीन था
धोखा हुआ, धोखा हुआ !
1944

(9) साधना का मर्म

क्या चले कुछ दूर पथ पर, मन! सतत-आवेश भरकर,
क्या तपे हो अग्नि में तुम मौन, कुन्दन-से निखर कर ?

कब मिटे हो तुम जगत में शांतिमय जीवन बसाने ?
कब बढ़े हो गहन तम में दूर का आलोक पाने ?

हैं कहाँ देखे अभी इस विश्व में तूफ़ान निर्मम ?
कब किये हैं पार तुमने पंथ बिन पाथेय दुर्गम ?

है सहा मरुभूमि का कब शीत-गर्मी-ताप भीषण ?
कब हुए हैं तिक्त अनुभव, कब हुआ दुख-ग्रस्त जीवन ?

श्रम-कणों की धार फूटी क्या कभी इस फूल-तन से ?
आपदाएँ हैं सहीं क्या स्वस्थ निर्भय शांत मन से ?

ये चरण डगमग हिलेंगे जब कहोगे, 'सह रहे हैं !'
दुःख के कटु दुर्दिनों में, जब कहोगे, 'रह रहे हैं !'

जान जाओगे तभी तुम साधना का मर्म क्या है !
हो सतत संघर्ष का युग, फिर मनुज का धर्म क्या है !
1944

(10) जीवन-तरु

ये मुरझा कर टूट रहे हैं, मेरे जीवन-तरु के पल्लव !

दुख की उष्ण हवाओं ने आ सोख लिया सब प्राणों का रस,
कोमल दृढ़तर सब अंगों को हाय, शिथिल कर डाला बरबस,

रुधिर प्रवाहित करने वाली गतिहीन पड़ीं तन की नस-नस,
रह जाते अरमान अधूरे, अर्द्ध-डगर पर ही तरस-तरस,
उर में अभिलाषाएँ अगणित रह जातीं क़ैद वहीं वेबस,
मेरे जीवन का नंदन वन है पतझर-सा सूखा तहस-नहस,
भीषण रूप बना मरघट का, है मौन खगों का मधु-कलरव !

बिन विकसे खोयी कितनी ही सुरभित कलियाँ, कोमल किसलय,
डाली-डाली सूख रही है, पर सहता जाता मौन हृदय,
प्राण प्रकम्पित करने वाले स्वर में मन की कोयल गाती,
सूखी-सरि के निर्जन तट पर करुणा का संगीत बहाती,
आँसू की धाराएँ मिलकर गंगा-यमुना-सी लहरातीं,
पूरी गति से बाढ़ उमड़कर उर-घाटी में आ चढ़ जाती,
पर, आज बहाए ले जाती काँटों का दुखदायी वैभव !

1945

(11) रे मन

रे मन !
बीती गाथाओं की स्मृति पर
तुम अश्रु बहाना मत पल भर,

जीवन में आहें भरना मत
इससे दुर्बलता आती है,
धूल उदासी की छाती है,
बन जाता जीवन शुष्क-विजन !
रे मन !

रे मन !
मूक रुदन के गीत न गाना,
भूल निराशा ओर न जाना,

तूफ़ानों में दीपक से तुम
हँस-हँस तिल-तिल जलते रहना,
आघात सभी सहते रहना,

तभी तुम्हारा सार्थक जीवन !
रे मन !

1944

(12) आँसुओं का मोल

मूल्य मेरे आँसुओं का
कब जगत पहचान पाया ?

देखता ही तो रहा वह
आँसुओं की धार अपलक,
दो नयन निर्मम लिए बस
स्नेह से हों रिक्त दीपक,
वेदना के स्वर मिलाकर
किस मनुज ने गान गाया ?

कौन है जो सिसकियों का,
मूक आहों का, मरण का,
पंथ सहचर ज़िन्दगी का
मिल गया हो ठीक मन का,
कौन है जिसने हृदय की
उलझनों से त्राण पाया ?

1946

(13) बहने देना....

बहने देना आँसू मेरे किन्तु, स्नेह-उपहार न देना !

पथ पर जब मैं रुक-रुक जाऊँ,
प्रति पग पर जब झुक-झुक जाऊँ,
तूफ़ानों से लड़ते-लड़ते
झंझा में फँस कर थक जाऊँ,
गिर-गिर चलने देना मुझको, क्षण भर भी आधार न देना !

ज्वार उठे सागर में चाहे,
नौका फँसे भँवर में चाहे,
देख घिरी घनघोर घटाएँ
धड़कन हो अंतर में चाहे,
बढ़ने देना मुझको आगे, हाथों में पतवार न देना !

अंधकार-मय जीवन-पथ पर,
कुश-कंटक मय जीवन-पथ पर,
संबल-हीन अकेला केवल,
अपना अन्तस्तल ज्योतित कर,
मैं उठता-गिरता जाऊंगा, सुलभ-ज्योति संसार न देना !
1945

(14) चुनौती

आज विश्व की महाशक्ति को मुझे चुनौती दे देने दो !

मानव-पथ पर,
युद्ध निरन्तर,
चारों ओर मचा कोलाहल
जाता जिससे आकाश दहल
मिटा सवेरा,
घिरा अँधेरा,
मुझको अपने उर-साहस की, आज परीक्षा ले लेने दो !

लहरें आयीं,
विप्लव लायीं,
तूफ़ान उठे सागर-तल में,
बिजली कड़की बादल-दल में,
पतवार नष्ट,
संबल विनष्ट,
अंधकार-मय भीषण क्षण में जीवन-नौका को खेने दो !
1945

(15) विनाश

मैं मिटता जाता हूँ प्रतिपल !

तारे छिप जाते अम्बर में,
लहरें मिट जातीं सागर में,
वीणा के स्वर लय हो जाते
बहते मारुत के सर-सर में
काल-धार में एक दिवस मैं भी लय हो जाऊंगा चंचल !

कुसुमों का दो-दिन का यौवन,
दो-दिन का भ्रमरों का गायन,
जब दो-दिन में ही सीमित है
उनकी इच्छाओं की धड़कन,
दो-दिन में मेरी भी काया नश्वर हो जाएगी दुर्बल !

दिन छिपता उड़ती धूलि गगन,
निशि ढलती जाती है प्रतिक्षण,
युग बीत रहे अपनी गति से,
होता रहता जग-परिवर्तन,
मैं भी जीवन-पथ पर चलता जाता लेकर अंतर-हलचल
1946

(16) विकास

मैं खिलता जाता हूँ प्रतिपल !

तरुवर की डालों पर कलियाँ,
नभ में झिलमिल तारावलियाँ,
धीरे-धीरे आ खिल जातीं लेकर जीवन की ज्योति नवल !

सूखी सरिता छल-छल जल भर,
बूँदें मरुथल टप-टप पाकर,

जब जीवन पा जाता कण-कण, मैं भी भर लेता उर में बल !

भर कर मीठा हास जगत में,
आया नव मधुमास जगत में,
मेरे स्वर भी बोल उठे, जब कूक उठी पेड़ों पर कोयल !
1946

(17) जागरण

आज जीवन में सफलता की मुझे आहट मिली है !

आज तो आराधना का
इस हृदय की साधना का
फल मिलेगा, बल मिलेगा,
आज तो पतझार में अगणित नयी कलियाँ खिली हैं !

उठ रही हैं मुक्त लहरें,
भाव रोदन के न ठहरें,
पास यह गन्तव्य आया
हार का बंदी नहीं, जीत मुझसे आ हिली है !

मिट चुकी है रात काली,
छा रही है आज लाली,
हो रहा कलरव मनोहर
जागरण-बेला यही है, प्राण ने पहचान ली है !
1947

(18) रस-संचार

आज रस-संचार !

अश्रु के ले सिंधु को
दुःख उर से खो गया,
यह युगों के बोझ का

भार हलका हो गया,
गीत मन ने गा लिया
गूँजती झंकार ! / आज रस-संचार !

धूप जीवन की गयी
शांत प्राणों की जलन,
बादलों की छाँह में
मिल गया शीतल पवन,
प्रेम प्रिय का पा गया
मौन कर स्वीकार ! / आज रस-संचार !

लय निमिष में हो गये
कष्ट सब दिन-रात के
हो गया अंतर हरा
वाटिका-सम-पात के,
सुख चिरंतन पा गया
स्वर्ग कर साकार ! / आज रस-संचार!
1949

(19) वरदान

खुल गये आबद्ध अन्तर द्वार !

सिंधु करता जब गरज अतिहास ;
नाचती थी मृत्यु आकर पास,
आँधियों की गोद में जब हो रहा था
अब गिरा, हा ! अब गिरा, तब
हाथ में दृढ़ आ गया पतवार !

याचना करता रहा हैरान
पंथ पर विक्षुब्ध मन म्रियमाण,
नग्न भूखी ज़िन्दगी साकार हो जब
ले रही थी साँस अंतिम

मिल गये तब विश्व के अधिकार !

डूबते से जा रहे थे प्राण ;
शुष्क निर्जन था सकल उद्यान
पीत-पत्तों को गँवा कर डालियाँ जब
लुट गयीं तब, दूर से आ
चली पड़ी मधुमय बसंत-बयार !

1946

(20) परिवर्तन

जग के उर में किसने डाली आज नये फूलों की माला,
खाली प्याली में किसने रे भर-भर कर छलका दी हाला !

सूखे तरु-तरु, पल्लव-पल्लव में फिर से आयी अरुणाई,
कण-कण झूम उठा चंचल हो, चमक दिशाएँ भी मुसकाईं !

है बनी सुहागिन धरा-वधू जिसके अंग-अंग में शुचिता,
कोमल नव-पंखुरि-सी सुन्दर मनहर शीतल जिसकी मृदुता!

झूम रही है जगती सारी उमड़ी सरिता-सी दीवानी,
खेल रहा है मानों टकरा पथ के पाषाणों से पानी !

जग का उपवन स्वर्ण अलंकृत, बीती बोझिल युग-रात घनी,
नभ के परदे पर यौवन की नव लाली उतरी स्नेह-सनी !

नव-संसृति में आया जीवन, अणु-अणु में है कंपन सिहरन,
चंचल लहरों से डोल उठा जगती-सरि का सोया तन-मन!

गुञ्जित नभ-भू आँगन, होता चिड़ियों का मीठा कलरव,
परिवर्तन की मधु बेला में सबने रूप धरा है नव-नव !

1947

(21) पतझर और बंसत

उड़ रही है धूल !
उड़ रही है, धूल !
डालियों में आज
खिल रहे हैं फूल !
खिल रहे हैं फूल !
झर रहे हैं पात,
भर रहे हैं पात,
आज दोनों बात !
आ रहा ऋतुराज
सृष्टि का करता हुआ
फिर से नया ही साज !
पिघला बर्फ़
नदियों के बढ़े हैं कूल !
उड़ रही है धूल !

1949

(21) प्रभात की चाह

बोले जीवन के मधुबन में
कोयल का स्वर, कोयल का स्वर !

लद जाएँ कुसुमों से डाली,
अम्बर में फूट पड़े लाली,
बह चले सुरभिमय मंद पवन,
छा जाए जग में हरियाली,
गा दे गीत खगों की टोली
नीरव जीवन-सरिता तट पर !

रजनी मौन भरे जीवन से,
भ्रमरों के गुनगुन गुंजन से,

जग कोलाहलमय हो जाए,
छूट पड़े जीवन बंधन से,
डोल उठे संसृति का अणु-अणु
प्राणों में शक्ति नयी पाकर !

जागे सोया मानव-जीवन,
बदले जग का जीवन-दर्शन,
निर्धनता, व्यथा मिटे सारी,
हो नवल विश्व, नूतन जन-मन,
मिट जाए सपनों की दुनिया,
लहराए जागृति का सागर !

1949

(23) प्रभात

विहग सुनसान में, तरु पर, प्रभाती-गान जीवन का
सुखद, उन्मुक्त स्वर से, एक लय में गा रहा है क्यों ?

सितारे छिप गये सारे, अँधेरा मिट गया सत्वर,
उषा-साम्राज्य का अनुचर दिखाई दे रहा दिनकर,
गगन में मौन एकाकी, गयी है ज्योति पड़ फीकी,
छिपाता मुख जगत से चाँद उड़ता जा रहा है क्यों ?

अलस तंद्रा भरी चुपचाप थी दुनिया अभी सोयी,
मनुज सब स्वप्न में डूबे सचाई रूप की खोयी,
जगा जन-जन, जगा हर मन, मुखर वातावरण प्रतिपल
नया संदेश, जीवन जागरण-क्षण पा रहा है क्यों ?

1949

(24) री हवा !

री हवा !
गीत गाती आ,
सनसनाती आ ;
डालियाँ झकझोरती
रज को उड़ाती आ !

मोहक गंध से भर
प्राण पुरवैया
दूर उस पर्वत-शिखा से
कूदती आ जा !

ओ हवा !
उन्मादिनी यौवन भरी
नूतन हरी इन पत्तियों को
चूमती आ जा !

गुनगुनाती आ,
मेघ के टुकड़े लुटाती आ !

मत्त बेसुध मन
मत्त बेसुध तन !

खिलखिलाती, रसमयी,
जीवनमयी
उर-तार झंकृत
नृत्य करती आ !
री हवा !
1949

(25) रात

चाँदनी छिटकी हुई बेछोर,
नाचता है उल्लसित मन-मोर,
नींद आँखों से उलझकर हो गयी है दूर !

प्राण ने सुखमय नया संसार,
आज पलकों में किया साकार,
मूक नयनों का तभी यह बढ़ गया है नूर !

है बड़ी मोहक रुपहली रात,
दूर पूरब से बहा है वात,
व्योम में छाया हुआ निशि का नशा भरपूर !

प्राणमय कितना निशा का गान,
सुन जिसे रहता नहीं है ध्यान,
है छिपा कोई कहीं पर सृष्टि-भेद ज़रूर !

1949

(26) ढलती रात

स्वर्ग का ऐश्वर्य
धरती पर सहज बिखरा हुआ,
आकाश-पथ की चाँदनी की धूल से
निखरा हुआ !

जगमगाती रात
ठहरे पात,
निर्जन में अकेली मूक
जीवन की पहेली-सी
रुकी-सी रात !

अंतर-तृप्ति की छाया

बनी प्रतिमा सलज्जा, मुग्ध सोयी रात
मानों सब गयी अपना कहीं पर हार !
धुँधली-सी गयीं बन गूढ़ रेखाएँ
बतातीं हो गयी हैं पूर्ण इच्छाएँ,
अरी ! शीतल सकुचती रात !
मत कर साधना ऐसी
न हो नव भोर,
सपनों की न टूटे
रजत-राका-रश्मियों की डोर !

री पगली ! वही तो दे सकेगा
शक्ति, प्राणों में नया उत्साह, गति, कंपन !
मचा यों शोर
हो नव भोर !

1949

(27) मेघों से

दौड़ते आकाश-पथ से
जा रहे किस देश को घन ?

देख जिनको कर रही सज्जा प्रकृति-बाला,
देख जिनको आज छलकी पड़ रही हाला,
जो लगाए आश, उनको
छोड़कर क्यों जा रहे घन ?

हर तृषित की प्यास को तुमको बुझाना है,
हर भ्रमित को राह भी तुमको सुझाना है,
पर, बिना बरसे अरे तुम
जा रहे किस देश का घन ?

यों तुम्हारा देर से आना नहीं अच्छा,
फिर गरज कर, क्रोध में जाना नहीं अच्छा,

एक पल रुक कर बताओ
जा रहे किस देश को घन ?

1949

(28) घटाएँ

छा गये सारे गगन पर
नव घने घन मिल मनोहर,
दे रहे हैं त्रस्त भू को
आज तो शत-शत दुआएँ !
देख लो, कितनी अँधेरी हैं घटाएँ !

कर रहा है व्योम गर्जन
मंद्र ध्वनि से, वाद्य-सा बन,
चाहता देना सुना जो
आज सारी स्वर-कलाएँ !
देख लो, ये व्योम-चेरी हैं घटाएँ !

अरुक बरसो बिन्दु जल के
तीव्र गति से, ना कि हलके,
विश्व भर में वृष्टि कर दो
दूर हों सारी बलाएँ !
देख लो, कितनी घनेरी हैं घटाएँ !

1949

(29) जल-वृष्टि

पानी बरसा, पानी बरसा !

देख रहे थे आसमान को
जब प्यासी आँखों से जन-जन,
सिर पर ज्वाला का बोझ लिए
जब साँसें भरते थे तरु-गण,
शांत हुए, जैसे ही टप-टप

पानी बरसा, पानी बरसा !

लरज-लरज कर बिजली चमकी
घुमड़-घुमड़ कर गरजे नव-घन,
भीग गया रे दूर क्षितिज तक
नंगी शुष्क धरा का कण-कण
जगती को नव-जीवन देने
पानी बरसा, पानी बरसा !

इस जल में नूतन जग की
रचना का सफल प्रयास छिपा;
इस जल में त्रस्त मनुजता का
सुन्दर निश्छल मधु-हास छिपा,
नवयुग का नव-संदेश लिए
पानी बरसा, पानी बरसा !

1947

(30) दीपक

मूक जीवन के अँधेरे में, प्रखर अपलक
जल रहा है यह तुम्हारी आश का दीपक !

ज्योति में जिसके नयी ही आज लाली है
स्नेह में डूबी हुई मानों दिवाली है !

दीखता कोमल सुगन्धित फूल-सा नव-तन,
चूम जाता है जिसे आ बार-बार पवन !

याद-सा जलता रहे नूतन सबेरे तक,
यह तुम्हारे प्यार के विश्वास का दीपक !

1948

(31) एकाकीपन

यह आज अकेलेपन पर तो
मन अकुला-अकुला आता है !

सुनसान थका देता मन को,
एकांत शिथिल करता तन को,
अब और नहीं एकाकीपन
जीवन के साथ रहे प्रतिक्षण,
यह उलझा-उलझा-सा यौवन
अब तो भार बना जाता है !

कब तक सूनी राह रहेगी ?
कब तक प्यासी चाह रहेगी ?
इतनी काली सघन निशा में
चलना कब तक एक दिशा में ?
यह रुका हुआ जीवन, उर में
भाव निराशा के लाता है !

1949

(32) साथी से

मिले हो आज जीवन की डगर पर
किंतु आगे साथ मेरा सह सकोगे क्या ?

अभी जीवन-निशा पहला प्रहर, तारे
गगन में आ, अनेकों आ, रहे हैं छा,
सघनतम आवरण छाया, नहीं दिखती
सफलता की प्रभाती की कहीं रेखा,
नहीं दिखता कहीं भी लक्ष्य का लघु
चिह्न, आँखों को यहाँ पर फाड़ कर देखा !

निराशा से बचा लोगे, सतत-गति,

लक्ष्य-उन्मुख प्रेरणा-स्वर कह सकोगे क्या ?

नहीं संदेह, प्राणों को यहाँ पाथेय,
साधन-हीन हो चलना असंभव है,
नहीं संदेह, दीपक को बिना लघु
स्नेह-बाती के कहीं जलना असंभव है,
नहीं संदेह, आँधी में भयावह
नाश का सामान हो पलना असंभव है !

तुम्हारे प्यार के बल पर चला हूँ,
पर, भला आगे सदय तुम रह सकोगे क्या ?

नहीं तो चल रहा हूँ मौन, जीवन-पंथ
पर आगे अकेला ही, अकेला ही,
नहीं तो चढ़ रहा हूँ पर्वतों को
आज मैं भागे अकेला ही, अकेला ही,
चला हूँ चीरता सागर-लहरियाँ
बाहुओं के बल, घिरी जब नाश बेला ही !

अभय वरदान देकर, मूक मन से
कह सकोगे यों, 'नहीं तुम बह सकोगे !' क्या ?

1949

(33) गाओ गीत

तुम कहते, 'गाओ आज गीत !
है पर्व मिलन का शुभ पुनीत !'

जीवन में सुखमय लहरों का
कंपन बरबस भर देते हो,
और तभी आ चपके-चुपके
उर धन-राशि चुरा लेते हो,
खो जाते भाव उदासी के

तुम दुःख भुला देते अतीत !
तुम मधु-पूरित शीतल निर्झर
हो मेरी जीवन-सरिता के,
छा जाते हो प्रतिपल मेरे
प्राणों के स्वर में कविता के,
मूक पराजय की बेला में
मैं जाता तुमको देख जीत !

1949

(34) तुम

तुम मेरे जीवन-तरु के
हो कोमल-कोमल किसलय !

तुमसे मेरे यौवन की
होती है पहचान प्रखर,
तुमसे मुरझाए मुख का
जाता है सौन्दर्य निखर,
देते मेरे जीने का
हिल-हिल मिल-मिल कर परिचय !

आँधी-पानी में, माना
मैं जड़ से हिल जाता हूँ,
पर, प्रतिपल अंतरतम से
गीत तुम्हारा गाता हूँ,
सतत तुम्हारे ही बल पर
लड़ता रहता बन निर्भय !

1949

(35) तुम्हारी माँग का कुंकुम !1

उड़ रहा है आज यह कैसे
तुम्हारी माँग का कुंकुम !

बहुत ही पास से मैंने तुम्हें देखा
न थी मुख पर कहीं उल्लास की रेखा,
न जाने क्यों रहीं केवल खड़ीं तुम पद-जड़ित गुमसुम!

मिला है जब तुम्हें यह गीतमय जीवन
बताओ क्यों हुआ विक्षुब्ध फिर तन-मन ?
न जाने किस भविष्यत् के विचारों से व्यथित हो तुम !

बुझा-सा हो रहा मुख-चंद्र चमकीला,
कि है प्रतिश्वास भारी, रंग-तन पीला,
न जाने आज क्यों हर वाटिका में जीर्ण-शीर्ण कुसुम !

1949

(36) प्रतिदान

तुम्हारे मूक निश्छल प्यार का
प्रतिदान कैसे दूँ !
अनोखे इस सरल मधु-प्यार का
प्रतिदान कैसे दूँ !

विश्वास था इतना
न दुर्बल हो सकूंगा मैं,
विश्वास था इतना
न मन-बल खो थकूंगा मैं !
पर, रुका हूँ,
सोचता हूँ
एक मंज़िल पर
कि कैसे बन सकूँ मैं अंग, साथी
इस तुम्हारे मोह के संसार का !
प्रतिदान कैसे दूँ
तुम्हारे मूक निश्छल प्यार का !

स्नेह पाया था ;

कहानी बन गयी !
अवश निशानी बन गयी !
अफ़सोस है गहरा
कि उसका गीत ही अब गा रहा हूँ,
और अपने को
विवश-निरुपाय कितना पा रहा हूँ !
और ही पथ आज मेरे सामने
जिस पर निरंतर जा रहा हूँ !
सोचता हूँ
साथ कैसे दूँ तुम्हारे राग में

जो बज रहा है ज़िन्दगी के तार का !
प्रतिदान कैसे दूँ
तुम्हारे मूक निश्छल प्यार का !

उन्माद भावुकता सभी तो
आज मुझसे दूर हैं,
स्वर्णिम-सुबह की रश्मियाँ सब
श्याम-घन के आवरण में
बद्ध हो मजबूर हैं !
औ' युग-विरोधी आँधियाँ हैं;
पर, तुम्हारी याद कर
इन आँधियों के बीच भी
पुरज़ोर रह-रह सोचता हूँ
किस तरह दूंगा तुम्हें
वह अंश जीवन का
मिला है जो तुम्हें
सच्चे हृदय के स्नेह के अधिकार का !
प्रतिदान कैसे दूँ
तुम्हारे मूक निश्छल प्यार का !
1949

(37) तुम्हारी याद

बस, तुम्हारी याद मेरे साथ है !

आज यह बेहद पुरानी बात की
ध्यान में फिर बन रही तसवीर क्यों ?
आज फिर से उस विदा की रात-सा
आ रहा है नयन में यह नीर क्यों ?
सिर्फ़ जब उन्माद मेरे साथ है !

कह रही है हूक भर यह चातकी
'प्रेम का यह पंथ है कितना कठिन,
विश्व बाधक देख पाता है नहीं
शेष रहती भूल जाने की जलन !'
बस, यही फ़रियाद मेरे साथ है !

पर, तुम्हारी याद जीवन-साध की
वह अमिट रेखा बनी सिन्दूर की ;
आज जिसके सामने किंचित् नहीं
प्राण को चिंता तुम्हारे दूर की,
देखने को चाँद मेरे साथ है !
1949

(38) याद

आज बरसों की पुरानी आ रही है याद !

सामने जितना पुराना पेड़ है
उतनी पुरानी बात,
हो रही थी जिस दिवस आकाश से
रिमझिम सतत बरसात,
छिप गया था श्यामवर्णी बादलों में चाँद !

तुम खड़ी छत पर, अँधेरे में सिहर
कर गा रही थीं गीत,
पास आया था तभी मैं भी ; मिले
थे स्नेह से दो मीत ;
आज नयनों में उसी का शेष है उन्माद !
1949

(39) साथ न दोगी ?

जब जगती में कंटक-पथ पर
प्रतिक्षण-प्रतिपल चलना होगा,
स्नेह न होगा जीवन में जब ;
फिर भी तिल-तिल जलना होगा,
घोर निराशा की बदली में
बंदी बनकर पलना होगा,
जीवन की मूक पराजय में
घुट-घुट कर जब घुलना होगा,
क्या उस धुँधले क्षण में तुम
भी बोलो, मेरा साथ न दोगी ?

जब नभ में आँधी-पानी के
आएंगे तूफ़ान भयंकर,
महाप्रलय का गर्जन लेकर
डोल उठेगा पागल सागर,
विचलित होंगे सभी चराचर,
हिल जाएंगे जल-थल-अम्बर,
कोलाहल में खो जाएंगे
मेरे प्राणों के सारे स्वर,
जीवन और मरण की सीमा
पर, क्या बढ़कर हाथ न दोगी ?
1949

(40) प्रतीक्षा में

प्रतीक्षा में सितारे खो गये !

बितायी थी अकेली रात जिनको गिन,
बने थे धड़कनों के जो सबल संबल,
किरन पूरब दिशा से ला रही अब दिन ;
निराशा और आशा का उड़ा आँचल,
निरंतर आँसुओं की धार से
छायी गगन की कालिमा को धो गये !

नयन पथ पर बिछे, निशि भर रहे जगते
सरल उर-स्नेह से जलता रहा दीपक,
जलन पूरित सभी भावी निमिष लगते ;
युगों से कर रहा मन साधना अपलक,
हृदय में आ प्रिये ! उठते सतत
अच्छे-बुरे ये भाव रह-रह कर नये !

क्षितिज की ओर फैले पंथ से चल कर
कभी हँसते हुए तुम पास आओगे,
बना विश्वास, जीवन के अरे सहचर !
नहीं तुम इस तरह मुझको भुलाओगे,
पपीहे ! कह वियोगी के सभी
अब तो अभागे कल्प पूरे हो गये !
1949

(41) परिणाम

यह युगों की साधना का
आज क्या परिणाम है ?

मैं तुम्हारे रूप का साधक

जोहता शोभा सदा अपलक,
पर, गया मिट सुख-सबेरा
ज़िन्दगी की शाम है !

स्वप्न में तुमको बुलाया था,
कक्ष अंतर का सजाया था
पर, युगों से स्नेह-निर्झर
बह रहा अविराम है !

श्रवण आहट पर टिके मेरे,
नयन-युग पथ पर झुके मेरे,
पर, नहीं आभास तक का
आज किंचित नाम है !

1949

(42) उन्मेष

आज मन बेचैन है !
वह कौन है
जो कर रहा अविराम आकर्षित,
अधिक चंचल
कि मारुत भी पिछड़ता जा रहा है ?
कौन-से विश्वास की ज्वाला समायी है
कि जिससे हर पिरामिड-भाव अंतर के
पिघलते जा रहे हैं ?
कि जिसके हेतु तूने
प्राण की सब शक्ति
सब पुरुषार्थ
निर्भय रख दिया है दाँव पर !

अंतर, भुजा का बल,
शिराओं का धधकता रक्त निर्मल
आज आँधी बन

विफलता के सभी बादल
गगन से दूर अविरल कर
सुनहली नव-किरण
लाना यहाँ पर चाहता है !
कौन-सा ज्योतित सबेरा
आज आशा की लकीरें
मन-पटल पर कर रहा अंकित ?
नवल-निर्माण के हित
दे रहा जो प्रेरणा ?
यह राह
जिस पर दृष्टि केन्द्रित;

है बड़ी, फैली हुई मरुथल सहारा-सी,
कि जिस पर हैं
कहीं टीले गरम जलहीन रेतीले,
कहीं फैले हुए मैदान
मृग-मन को भ्रमित करते हुए।
जिन पर दिखाई दे रहे हैं
हड्डियों के ढेर
गीले शव
कि जिनकी जीभ बाहर होंठ को छू
चाटती ही रह गयी है !
पर, बोल तो मन
कौन-सा है स्वप्न ऐसा
जो जगत में कर रहे साकार ?
जिसके हित नहीं रे
आज तक स्वीकार
असफलता, निराशा-भार !

1949

(43) कामना

कामना मेरी !

गगन-सी बन,
विकल सिहरन,
प्राण में रह कर समायी री नहीं पाती
सघन नव-बादलों-सी कल्पना मेरी !

सरल दीपक,
चमक अपलक,
वंदना के स्वर हृदय में आज तो बंदी !
सजी है पूर्ण जीवन-अर्चना मेरी !

जलन खोयी,
अमृत धोयी,
जल रही अविरल अकम्पित लौ हृदय की यह
सतत उद्देश्य-लक्षित साधना मेरी !

1949

(44) जीवन का अभिनय

संसार समझ कब पाया
मेरे जीवन का अभिनय !

मेरे जीवन की धरती पर
ऊबड़-खाबड़ पथ
सर-सरिता, गिरि-वन,
मैदान-पठार बने;
मरुथल, दलदल;
सुख-दुख का क्रम,
उत्थान-पतन
मुसकान-रुदन

है हार-विजय ?

मेरे जीवन के अम्बर में
आँधी झञ्झा,
हिम का वर्षण,
पानी की बूँदों की रिमझिम,
गर्जन-स्वर है, विद्युत कंपन ;
क्षण देदीप्य अमर सविता-चंदा जैसे,
उल्काएँ भी नश्वर !
सुन्दर और असुन्दर,
शिव और अशिव
भावों का संचय !

1945

(45) नहीं है ...

नहीं है रोशनी यह वह
जिसे बादल जलाता है !

नहीं वैसी चमक तड़पन,
नहीं वैसी भरी सिहरन
नहीं उन्माद है वैसा
जिसे यौवन सजाता है !

नहीं बल आँधियों का यह,
नहीं स्वर दृढ़-हियों का यह
नहीं वह गीत जीवन का
जिसे आकाश गाता है !

1944

(46) सत्य

दीप जलता है नहीं, यह
स्नेह का सागर रहा जल !

ज्ञान, संस्कृति, मनुज-दर्शन,
ध्येय, जन, साहित्य, जीवन
सब बदलते जा रहे, अविराम गति से पग मिला कर,
युग नहीं चलते कभी भी
आदमी केवल रहे चल !

रात-दिन अविश्रांत नर्तन,
ग्रीष्म-वर्षा, फिर शिशिर-क्षण,
एक के उपरांत आकर, हैं सदा करते युगान्तर,
शून्य में अविचल प्रभाकर,
भूमि ही गतिशील प्रतिपल !

ज़िन्दगी क्या ? एक हलचल,
मूक-जड़ता में रही पल,
है शिथिल,उत्साह दुर्दम, वेग गति, रुक-रुक, सरल,दृढ़,
मुक्त बहता है न जीवन ;
सिर्फ़ बहती धार चंचल !

1946

(47) वेदना

घाव पुराने पीड़ा के
जाने-अनजाने में सबके
आज हरे गीले सूजे !
रह-रहकर बह जाती असह्य लहर,
मानो बिजली का तीव्र करेंट ठहर
मांस मौन तड़पा देता !
नाली के कीड़ों जैसा इधर-उधर
जग के सारे ओर-छोर घेरे,
हृदय विदारक
नाशक
मूक अभावों की
धूल भरी अंधी

आँधी बहती जाती !
मर्माहत यौवन चीख रहा
रोक भुजाओं से असफल !
आज निराशा के बादल
छाये नभ में उमड़-घुमड़ ;
जीवन में,
जन-जन-मन में हलचल !

आज युगों के घाव हरे !
हर उर में
दुख-दर्द भरे !

1949

(48) अभी नहीं....

अभी नहीं तूफ़ान उठा है !

कुहराम नहीं
काँपी न मही
टूटे न अभी नभ के तारे,
प्रतिद्वन्द्वी स्वर न थके हारे
अभी नहीं जन-जन के मन में
मुक्ति इष्ट का भाव जगा है !

संघर्ष अथक
नव-ज्योति चमक
फूटी न कहीं अंदर-बाहर,
किंचित उमड़ा न हृदय-सागर,
अभी नहीं नव-रवि की किरणें
वसुधा पर तम विजन घना है !

सुनसान डगर
बीहड़ मर्मर

तरुवर सूखे जर्जर लुण्ठित,
संसृति का कण-कण अपमानित,
अभी नहीं सबके जीने का
पीड़ित जग ने मंत्र सुना है !

बदले दुनिया,
गुज़रें सदियाँ
क्रूर दमन की, बर्बरता की,
मानव-मन की दुर्बलता की,
अभी न नव जग में माता ने
नव शिशु का रुदन सुना है !

1949

(49) जल्दी करो !

जल्दी करो, जल्दी करो !

तूफ़ान सिर पर आ गया
भीषण प्रलय-तम छा गया,
मृत ध्वंस का अभिनय हुआ,
पथ से विपथ सब हो गया,
दृढ़ ओट की चिन्ता अरे
जल्दी करो, जल्दी करो !

नभ-स्पर्श करने उठ रहीं
लहरें प्रखर बस में नहीं,
यह नाव डगमग हो रही
पतवार दे धोखा गयी
बस, पास का तट देख लो
जल्दी करो, जल्दी करो !

ज्वालामुखी है फट रहा,
भूकम्प से थल कट रहा,

जल-मग्न जनपद हो रहे,
जी तोड़ भगती बस्तियाँ,
नव शक्ति का संचय अथक
जल्दी करो, जल्दी करो !

1944

(50) जीवन-धारा

जीवन द्रोह अभिनव गीत
सुनकर मत बनो भयभीत
यह अरोहमय नूतन सृजन-संगीत !

जड़वत्
शैल-गति-निर्माण जैसी रीति की
सहगामिनी-धारा
मनुजता की सृजनशीला नहीं है !
(कौन कहता, 'व्योम यह नीला नहीं है !')
बढ़ रहा हो ढाल पर रुक-रुक
धरा-केन्द्रिय-बल अभिभूत
फैला ग्लेशियर गंगोत्री के पार,
करता लघु सृजन-संहार ;
लघु-लघु रूप का परिणाम
जीवन-द्रोह का झरना नहीं है !

लोकरुचि मेरे समय की दिव्य है,
कोई मलिनवदना नहीं है !

छा रही युग-भित्ति पर
जगमग अरुणिमा री !
बड़े विश्वास की
गरिमा अनोखी री !

1949

●

4

अभियान

रचना-काल सन् 19431952
प्रकाशन सन् 1954

कविताएँ

1 मशाल
2 बन्धन-मुक्त
3 कहाँ अवकाश ?
4 ग्रीष्म
5 मृत्यु-दीप
6 वैषम्य
7 पराजय
8 व्यष्टि
9 अन्तर-ज्वाला
10 बेबसी
11 प्रलय-संगीत
12 कवि
13 युग-कवि
14 संघर्ष
15 मेरी आहें
16 चेतना
17 तरुण
18 नारी
19 देश-दीपक
20 बलिया
21 प्रभंजन
22 परिवर्तन हो
23 नया सबेरा
24 साधक
25 तुलसीदास (1)
26 तुलसीदास (2)
27 प्रेमचंद
28 गांधी (1)
29 गांधी (2)
30 गांधी (3)
31 गांधी (4)
32 गांधी (5)
33 मालवानां जयः
34 उज्जयिनी
35 खेतिहर
36 खेतों में
37 अभियान

(1) मशाल

बिखर गये हैं ज़िन्दगी के तार-तार !
रुद्ध-द्वार, बद्ध हैं चरण,
खुल नहीं रहे नयन ;
क्योंकि कर रहा है व्यंग्य
बार-बार देखकर गगन !
भंग राग-लय सभी
बुझ रही है ज़िन्दगी की आग भी !
आ रहा है दौड़ता हुआ
अपार अंधकार !
आज तो बरस रहा है विश्व में
धुआँ, धुआँ !

शक्ति लौह के समान ले
प्रहार सह सकेगा जो
जी सकेगा वह !
समाज वह
एकता की शृंखला में बद्ध,
स्नेह-प्यार-भाव से हरा-भरा
लड़ सकेगा आँधियों से जूझ !

नवीन ज्योति की मशाल
आज तो गली-गली में जल रही,
अंधकार छिन्न हो रहा,
अधीर-त्रस्त विश्व को उबारने
अभ्रांत गूँजता अमोघ स्वर,
सरोष उठ रहा है बिम्ब-सा
मनुष्य का सशक्त सर !
1949

(2) बन्धन-मुक्त

बन्धन से तुमको प्यार न हो !
बंदी शत-शत बन्धन में यह उगता अभिनव संसार न हो!
बन्धन से तुमको प्यार न हो!

युगके सैनिक हो, क्रांति करो, नवयुगकी बढ़कर सृष्टि
करो,मानवता के संताप-क्लेश, पीड़ा, अभाव सब शीघ्र हरो,
बलिदानों की बलिवेदी पर
डरना तुमको स्वीकार न हो!

अगणित मानव सैनिक बन कर आर्थिक हमले में कूद पड़ो,
प्राणों का रक्त बहाने को युग-कवि ! गौरव का गान पढ़ो,
नूतन दुनिया में क्षणभर भी
जनजन का जीवन भार न हो!

फिर महाप्रलय के गर्जन से वसुधा का अंतर कंपित हो,
पूँजी की ज़ंजीरों में बँध अब और न जनता शोषित हो,
समता की दृढ़ तलवारों से
वैभव पर बंद प्रहार न हो !

यह दो-युग का संधिस्थल है संघर्ष छिड़ेगा वर्गों का,
सामाजिक-दर्शन बदलेगा, क्षय होगा स्थापित 'स्वर्गों' का,
दुःख कहीं तो एक ओर सुख
का बहता पारावार न हो !

1945

(3) कहाँ अवकाश ?

हमको कहाँ अवकाश है ?

जब मौत से हम लड़ रहे,
प्रतिपल प्रगति कर बढ़ रहे,
ये राह के कंटक सभी

लो धूल में अब गड़ रहे,
करना अँधेरे का हमें बढ़कर अभी ही नाश है !

हमने न देखे शूल भी,
हमने न देखी धूल भी,
हमने न देखे राह के
हँसते हुए मधु फूल भी,
हमने न जाना प्यार क्या औ' मोह का क्या पाश है !

हम हैं नहीं जो कल रहे,
हम चाल अपनी चल रहे,
क्या हार में, क्या जीत में
हम एक-से प्रतिपल रहे,
दुनिया बदलने के लिए अभिनव अटल विश्वास है !

1945

(4) ग्रीष्म

तपता अम्बर, तपती धरती,
तपता रे जगती का कण-कण !

त्रस्त विरल सूखे खेतों पर
बरस रही है ज्वाला भारी,
चक्रवात, लू गरम-गरम से
झुलस रही है क्यारी-क्यारी,
चमक रहा सविता के फैले
प्रकाश से व्योम-अवनि-आँगन !

जर्जर कुटियों से दूर कहीं
सूखी घास लिए नर-नारी,
तपती देह लिए जाते हैं,
जिनकी दुनिया न कभी हारी,
जग-पोषक स्वेद बहाता है,

थकित चरण ले, बहते लोचन !

भवनों में बंद किवाड़ किये,
बिजली के पंखों के नीचे,
शीतल ख़स के परदे में
जो पड़े हुए हैं आँखें मींचे,
वे शोषक जलना क्या जानें
जिनके लिए खड़े सब साधन !

रोग-ग्रस्त, भूखे, अधनंगे
दमित, तिरस्कृत शिशु दुर्बल,
रुग्ण दुखी गृहिणी जिसका क्षय
होता जाता यौवन अविरल,
तप्त दुपहरी में ढोते हैं
मिट्टी की डलियाँ, फटे चरण !

1949

(5) मृत्यु-दीप

कौन-से दीपक जले ये ?

विश्व में जब सनसनातीं वेग से नाशक हवाएँ,
साथ जिनके आ रही हैं हर मनुज-सर पर बलाएँ,
हो रहा जीवन-मरण का खेल जब रक्तिम-धरा पर,
मिट रहे मानव अनेकों घोर क्रन्दन का जगा स्वर,
त्रस्त-पीड़ित जब मनुजता कौन से दीपक जले ये ?

युद्ध के बादल गगन में, भूख धरती पर खड़ी है,
सांध्य-जीवन की करुण तम यह असह दुख की घड़ी है,
मृत्यु का त्यौहार है क्या ? विश्व-मरघट में जले जो,
स्नेह बिन बाती जलाकर शून्य में रो-रो पले जो ?
प्रज्वलित हैं जब चिताएँ कौन-से दीपक जले ये ?

1942

(6) वैषम्य

नभ में चाँद निकल आया है !
दुनिया ने अपने कामों से
पर, विश्राम नहीं पाया है !
नभ में चाँद निकल आया है !

कुछ यौवन के उन्मादों में
भोग रहे हैं जीवन का सुख,
मदिरा के प्यालों की खन-खन
में उन्मत्त पड़े हैं हँसमुख,
वे कहते हैं, किसने इतना
जगती में सुख बरसाया है !

कुछ सूनी आहें ले दुख की
सौ-सौ आँसू आज गिराते,
हत-भाग्य समझकर जीवन में
अपने को ही दोषी ठहराते,
वे कहते हैं, जाने कितना
जग में दुख-राग समाया है !

1944

(7) पराजय

मिल रही है हार !

मनुज का व्यवहार क्या,
सभ्यता विस्तार क्या,
स्वार्थ की दुर्भावना से मिट रहा संसार !

ज्वार-पूरित पूर्ण सागर,
और नौका क्षीण जर्जर,
है बड़ा पागल मनुज जो तोड़ता पतवार !

खींचता प्रतिपल प्रलोभन,
मिट रहा है मुक्त-जीवन,
कह रहा, पर, छल भरे स्वर, 'आज नवयुग द्वार !'
मिल रही है हार !
1945

(8) व्यष्टि

मैं केवल अपने सुख-दुख का क्या गान करूँ ?

देव ! तुम्हारी जन-नगरी में
महानाश का तांडव नर्तन,
अगणित मनुजों की लाशों पर
क्रूर पिशाचों का पद-मर्दन,
अपने घावों का फिर मैं क्या आख्यान करूँ ?

भय संस्कृति मिटने का प्रतिपल,
विश्व-सभ्यता पतनोन्मुख है ;
अस्थिरता, उथल-पुथल जीवन,
आशंका प्रतिक्षण सम्मुख है,
फिर अपने ही टिक रहने का क्या ध्यान करूँ ?

जिसने बंधन स्वयं बनाये,
पग-पग पर घुटने टेक दिये,
या अपने ही हाथों बढ़कर
रक्ताप्लावित युग-प्राण किये,
उस मानव पर फिर मैं कैसे अभिमान करूँ ?
1945

(9) अंतर-ज्वाला

अपने सुख को तजकर किसने संघर्षों को सिर मोल लिया ?
किसने निस्वार्थ, अभावों में निज तन-मन-धन से योग दिया ?

यह दुनिया अपनी ही जड़ता दुर्बलता से अनभिज्ञ रही,
जिसने अपने को बिन सोचे औरों की बातें खूब कहीं !

रोटी के टुकड़ों पर मानव का सर्वस्व दिया है लुटने,
जिसने, प्रतिहिंसा की ज्वाला में लाखों शीश दिये कटने !

अनगिनती अभिलाषाओं के पाने के अंध-प्रयासों में,
जिसने मानवता की परवा छोड़ी अपने अभ्यासों में !

पशुता का आदिम रूप वही उतरा है फिर से धरती पर
भीषण नर-संहार मचा है, गूँजा सामूहिक क्रन्दन-स्वर !

व्याकुलता जाग रही प्रतिक्षण सम्पूर्ण विश्व के आँगन में,
धधक रही है अंतर-ज्वाला नव-परिवर्तन की कण-कण में !

अब आने वाली है आँधी, कट जाएंगे जिससे बंधन,
अगणित शोषक-साम्राज्यों के भू-लुण्ठित होंगे सिंहासन !
1942

(10) बेबसी

आज पड़े प्राणों के लाले !

धरती पर वैषम्य बड़ा है,
हर पथ पर हैवान खड़ा है,
घोर-निराशा के जीवन में आज घुमड़ते बादल काले !

रोटी पर संघर्ष मचा है,
जिससे कोई भी न बचा है,
मानव, मानव से लड़ता है, ले भीषण हथियार निराले !

अब जगती में आग लगेगी,
विद्रोही हुंकार जगेगी,

क्या अब वैभव रह पाएगा जीवित, उन घड़ियों को टाले ?

इतिहास बने बलिदानों का,
उत्सर्ग करो निज प्राणों का,
पीड़ित मानवता की जय हित, ओ कवि,प्रेरक गाने गा ले !
1945

(11) प्रलय-संगीत

आज तो हुंकार कर स्वर,
ज़ोर से ललकार कर स्वर,
जागरण-वीणा बजा, उन्मुक्त भैरव-राग से, मैं
गीत गाने को चला हूँ !

शीघ्र तोड़े बंधनों को,
तीव्र करदे धड़कनों को,
वेग से विप्लव मचाकर, सृष्टि करदे और नूतन ;
प्रेरणा दे, वह कला हूँ !

प्यार का संसार लाने,
शांति का उपहार लाने,
है युगों से व्यस्त जीवन, ध्येय को कर पूर्ण अर्पण
साधना में ही पला हूँ !

जो विघातक नीति जग की,
स्वाँग की जो प्रीति जग की,
आज इनको नष्ट करने का किया है प्रण हृदय से,
ज्वाल रक्षा हित जला हूँ !

1945

(12) कवि

मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करने वाला हूँ !

मैं शिव बनकर सारी जर्जर सृष्टि भस्म करने को आया,
बस मस्ती से कंटक-पथ पर ही चलना मुझको भाया ;
धधक उठी लपटें धू-धू कर मेरे एकमात्र इंगित से,
अब मिट जाएगी दुनिया से शोषक-वर्गों की छल-माया,
नष्ट-भ्रष्ट कर सारे बंधन, लाया नव-जीवन-ज्वाला हूँ !

परिवर्तन का आकांक्षी हूँ, मन्थन कर सकता सागर का,
वह भीषण आँधी हूँ जिससे कँपता वक्षस्थल अम्बर का,
मैं नवयुग का अग्रदूत हूँ, नयी व्यवस्था का निर्माता,
मैं नवजीवन का गायक हूँ, साधक अभिनव प्राणद स्वर का,
सजग-चितेरा नव-समाज को मैं चित्रित करने वाला हूँ !

मैं अजेय दुर्दम साहस ले दृढ़ता से करता आन्दोलन,
थर-थर कँप जाता है जिससे अवरोधी धरती का कण-कण,
युग के अगणित संघर्षों में, उलझा रहता मेरा जीवन
जिन संघर्षों से व्याकुल हो मानव कर उठते हैं क्रन्दन,
मैं इन संघर्षों से निर्भय, वज्रों को सहने वाला हूँ !
1945

(13) युग-कवि

मेरे भावों का वेग प्रखर,
मेरी कविता की पंक्ति अमर,
मेरी वीणा युग-वीणा है
कब मौन हुए हैं उसके स्वर ?
मैं तो गाता रहता प्रतिपल !

मेरे स्वर में है आकर्षण,
आकर्षण में जाग्रत जीवन,

जीवन में आशा-कांक्षा का
रखता मादक नूतन यौवन,
करते जगमग लोचन निश्छल !

मेरा युग दीख रहा उज्वल,
नर्तन करते तारे झलमल,
जिसकी धरती पर बहती है
शीतल-धार-सुधा की अविरल,
छाये रहते जीवन-बादल !

1944

(14) संघर्ष

क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ द्रोह की ज्वाला जगाने !

आज जीवन के सभी मैं तोड़ दूंगा लौह-बंधन,
शोषितों को आज अर्पित प्राण की प्रत्येक धड़कन
स्वत्व के संघर्ष में, मैं पीड़ितों की जीत के हित
अब चला हूँ गीत गाने !

दुःख-गिरि के दृढ़-हृदय पर आज भीषण वार करने,
चल रहा है मन, भंयकर मौत से व्यापार करने,
साथ मेरे चल रही हैं घोर तूफ़ानी हवाएँ
राह - बाधाएँ हटाने !

विश्व नूतन वेश लेगा दीखता जो क्षुब्ध जर्जर,
दे रहा जिसमें सुनायी सिर्फ़ क्रन्दन का करुण स्वर,
हूँ सतत संघर्ष रत मैं, रक्त से डूबी धरा पर
शांति, समता, स्नेह लाने !

1946

(15) मेरी आहें

मेरी आहें, मेरी आहें !

इनमें ज्वाला जलती अविरल,
इनमें तूफ़ानों-सी हलचल,
ये विप्लव करने को चंचल,
मेरी आहें, मेरी आहें !

इनमें भूचालों-सा कंपन,
हैं विद्रोही दुर्जय भीषण,
ध्वस्त सभी कर देंगी बंधन,
मेरी आहें, मेरी आहें !

पीड़ित जनता की हैं संबल
स्वर्ग बना सकती हैं भूतल,
शस्त्रों-से बढ़ रखती हैं बल,
मेरी आहें, मेरी आहें !

ये आहें हुंकार बनेंगी,
दानवता से आज लड़ेंगी,
'डरना मत', हर बार कहेंगी,
मेरी आहें, मेरी आहें !

1944

(16) चेतना

प्रति हृदय में शक्ति दुर्दम,
मूल्य अपना माँगता श्रम,
जागरण का भव्य उत्सव,
सृष्टि का सब मिट गया तम !

विश्व जीवन पा रहा है,

गीत अभिनव गा रहा है,
कर्म का उत्साह-निर्झर
आज उमड़ा जा रहा है !

आज आगे मैं बढ़ूंगा,
आपदाओं से लड़ूंगा,
राह की दुर्गम सभी
ऊँचाइयों पर जा चढ़ूंगा !
1947

(17) तरुण

दुनिया के अगणित मुक्त-तरुण
बंधन की कड़ियाँ तोड़ रहे !

युग-जनता ने करवट बदली
आज़ाद गगन का मूल्य गहा,
जनता ने जाना-पहचाना
'कटु पशुबल का हो नाश', कहा !
जाग्रत मनुज लुटेरों के गढ़
रज-सम ढूहों से फोड़ रहे !

सम्मुख दृढ़ चट्टानें आयीं
पथ की बाधाएँ बन दुर्दम,
भीषण-शर के आघात हुए
नव-रूप मनुज पर छा निर्मम,
दानवता से जूझ रहे जन-
जन, दुख के बादल मोड़ रहे !

1943

(18) नारी

चिर-वंचित, दीन, दुखी बंदिनि !
तुम कूद पड़ीं समरांगण में,
भर कर सौगन्ध जवानी की
उतरीं जग-व्यापी क्रन्दन में,
युग के तम में दृष्टि तुम्हारी
चमकी जलते अंगारों-सी,
काँपा विश्व, जगा नवयुग, हृत-
पीड़ित जन-जन के जीवन में !

अब तक केवल बाल बिखेरे
कीचड़ और धुएँ की संगिनि
बन, आँखों में आँसू भरकर
काटे घोर विपद के हैं दिन,
सदा उपेक्षित, ठोकर-स्पर्शित
पशु-सा समझा तुमको जग ने,
आज भभक कर सविता-सी तुम
निकली हो बनकर अभिशापिन !

बलिदानों की आहुति से तुम
भीषण हड़कम्प मचा दोगी,
संघर्ष तुम्हारा न रुकेगा
त्रिभुवन को आज हिला दोगी,
देना होगा मूल्य तुम्हारा
पिछले जीवन का ऋण भारी,
वरना यह महल नये युग का
मिट्टी में आज मिला दोगी !

समता का, आज़ादी का नव-
इतिहास बनाने को आयीं,
शोषण की रखी चिता पर तुम

तो आग लगाने को आयीं,
है साथी जग का नव-यौवन,
बदलो सब प्राचीन व्यवस्था,
वर्ग-भेद के बंधन सारे
तुम आज मिटाने को आयीं !
1949

(19) देश-दीपक

देश दीपक
स्नेह आहुतियाँ,
दमन की आँधियाँ
पर, लौ लहर कर व्योम में
जलती रहे, जलती रहे !

शीश बलिवेदी सतत चढ़ते रहें,
परतन्त्रता-युग-तम बदल जाये
प्रकाशित मुक्ति के सुन्दर क्षणों में !

जीत के स्वर, शांति के स्वर,
और नव-निर्माण के स्वर
साधना चलती रहे, चलती रहे !
गुञ्जित गगन, मुखरित जगत हो,
इनक़लाबी दृढ़ दहाड़ें
चिन्ह अन्यायी हुकूमत का मिटा दें,
त्याग का, बलिदान का,

नव-प्रेरणा का ज्वार ऐसा
जन-समुन्दर में बहेगा जब
तभी यह क्रांति का इतिहास
निर्मित हो सकेगा !
तोड़ पाएगा तभी
परतंत्रता की लौह-कड़ियों को

बँधा, जकड़ा हुआ यह राष्ट्र !

बुझ गया यदि देश-दीपक,
तो अँधेरा क्या
मरण-अभिशाप होगा !
लूट का आरम्भ होगा !
घोर शोषण की कहानी का
प्रथम वह पृष्ठ होगा !
इसलिए
बलिदान की है माँग,
आओ नौजवानो !
आज माता माँगती है
प्राण का उत्सर्ग !
धरती को बनाओ स्वर्ग !
1945

(20) बलिया

(सन् 1942 की क्रांति का जन-गढ़)

यह जन-गढ़ है अविजित-दुर्दम, है खेल नहीं टकराना,
इसने न कभी अत्याचारों के आगे झुकना जाना !

हिमगिरि उच्च-शिखर-सा वसुधा पर अविचल आज़ाद खड़ा,
पशुबल की 'गोरी' सत्ता से क़दम-क़दम पर अड़ा-लड़ा !

मानवता का जीवित प्रतीक, आज़ादी हित मतवाला,
पड़ न सकेगा इसके मुख पर साम्राज्यवाद का ताला !

आज जवानों ने खोल दिए हैं दृढ़ सीने फ़ौलादी,
इनक़लाब के चरण थके कब, जब ज्वाला ही बरसा दी !

तुम आँधी बन बढ़ते जाओ, साहस से, उन्मुक्त-निडर,
तुम पर बंदी माँ की ठहरी है रक्षा की आस अमर !

शोषित जन-जन साथ तुम्हारे अगणित कंधों का बल,
शत-शत कंठोंका विजयी स्वर गूँज रहा निर्भय अविरल !

खेतों-खलिहानों में गिरता है जो शव-रक्त तुम्हारा,
उससे फूटेगा आज़ादी का नूतन कोंपल प्यारा !

आगामी सदियाँ समझेंगी उसको निज प्राणों की थाती,
रोज़ जलेगी उस धरती पर बलिदानों की स्मृति-बाती !

1943

(21) प्रभंजन

आ रहा तूफ़ान है,
जीत का वरदान है,
शक्ति का ही गान है,
देश के अभिमान पर
प्राण का बलिदान है !
आ रहा तूफ़ान है !

स्वत्व का संग्राम है,
आज कब विश्राम है
युद्ध जब प्रतियाम है ?
गर्व मिथ्या नष्ट है,
स्वार्थ का क्या काम है ?
स्वत्व का संग्राम है !

विश्व में पाखंड जो,
द्वन्द्व है उद्दण्ड जो,
कँप रहा भूखंड जो,
अग्नि में सब जल रहा
हो रहा है खंड जो !
विश्व में पाखंड जो !

मुक्ति का उपहार है,
स्नेहमय संसार है,
शांति की झंकार है,
लूट शोषण, नाश की
नीति पर अधिकार है !
मुक्ति का उपहार है !

क्रांति का इतिहास है,
पास में विश्वास है,
सृष्टि में मधुमास है,
विश्व की बढ़ती हुई
मिट रही अब प्यास है !
क्रांति का इतिहास है !

छिप चुके कटु शूल हैं,
खिल रहे मधु फूल हैं,
कौन जो प्रतिकूल है ?
देख जीवन, आज का
कह रहा जो, 'भूल है' !
छिप चुके कटु शूल हैं !

1944

(22) परिवर्तन हो !

परिवर्तन हो !
नव-जीवन हो !
जग के कण-कण में
जागृति का नव-कंपन हो !
युग-युग के बाद उठें फिर से
उर-सागर में लहरें सुख की,
स्रोत बहे जीवन का निर्मल !
जन-जन-मन
संसार सुखी हो !

आएँ मधु-क्षण
चिर वंचित संसृति में फिर से,
पात्र सुधा का भर-भर जाए,
मादक सौरभ,
सपने मीठे,
शांति मधुर हो,
दुनिया का उजड़ा झुलसाया
सूखा उपवन
नन्दन-वन हो !
परिवर्तन हो,
परिवर्तन हो !
1945

(23) नया सबेरा

सबेरा नया आ रहा है !

युगों का अँधेरा मिटाकर,
बड़ा लौह-परदा हटाकर,
सबेरा नया आ रहा है !

नयी रोशनी में नहा कर,
पुराना गला सब बहा कर,
सबेरा नया आ रहा है !

नवल-शक्ति दुर्जेय भरता,
सबल शत्रु पर वार करता !
सबेरा नया आ रहा है !

मनुज को नये गान देता,
सरल स्नेह मुसकान देता,
सबेरा नया, आ रहा है !
1949

(24) साधक

व्यर्थ सकल आयोजन, बाधक !
इनसे न रुका है, न रुकेगा
निर्झर-सा बहता दृढ़ साधक !

पथ पर छायी है बीहड़ता,
युग-जीवन में हिम-सी जड़ता,
पर, पिघल सभी तो जाता है
साहस-ज्वाला का स्रोत अथक !

मन की चट्टानों के सम्मुख,
हो जाते हैं तूफ़ान विमुख,
सदा जला है, सदा जलेगा
मानवता का मंगल-दीपक !

है मनुज तुम्हारी जय निश्चित,
क्षण-क्षण की सिहरन अपराजित,
परिवर्तन में हो जाएगा
प्रतिक्रियाओं का जाल पृथक !
1944

(25) तुलसीदास

ओ महाकवि !
गा गये तुम
गीत-
जीवन के मरण के,
भाव-पूरक, मुक्त-मन के !
सत्य, शिव, सौन्दर्य-वाहक !
गीत-
जो अभिनव अमर
धरती-गगन के !

हैं अपार्थिव और पार्थिव
लोक के परलोक के !
साहस, प्रगति, नव-चेतना,
नव-भावना, नव-कल्पना
आराधना के गीत !
जिनमें गूँजता है प्राणमय संगीत
मानव हो न किञ्चित देखकर तू
काल के निर्दय भयंकर रूप से भयभीत,
निश्चित मनुजता की लिखी है जीत !
ओ अमर साधक !
नयी अनुभूतियों के देव,
तुमने जीर्ण-संस्कृति का किया उद्धार ;
श्रद्धा से झुकाता शीश यह संसार !

छा रहा था भय
कि जब मानव भटकता था अँधेरे में,
विवशता के कठिन आतंक-घेरे में ;
धुआँ चहुँ और झूठे धर्म का
जब घिर रहा था व्योम में,
औ' वास्तविकता जा छिपी थी
चक्र, कुण्डल, मंत्र, नाड़ी की
विविध निस्सार माया में,
भ्रमित था जग सकल
उलझी अनोखी रीतियों में,
तब उठे तुम
और तुमने थाह ले ली
पूर्ण 'मानस' भाव के बहते समुन्दर की !
किया विद्रोह अविचल,
बन गया जो त्रस्त, पीड़ित, नत
मनुजता का सबल संबल !
1948

(26) तुलसीदास

महाकवि तुम, तुम्हारा गीत
सच, हम गा नहीं सकते !

अँधेरा छा रहा था
जब कि तुम आये ;
किन्तु
वह सारा धुआँ छल का
बिखर कर उड़ गया
ज्योंही तुम्हारे स्वर
गगन में मुक्त मँडराए !
कि तुमको देखकर
लाखों दुखी जन के नयन
सुख-वारि से भर डबडबाए !
और उजड़े भग्न, हत, वीरान घर-घर में
नयी आशा, नये विश्वास के दीपक
विपद् कर भंग
फिर से टिमटिमाए !
तुम्हारी ज्योति के सम्मुख
तिमिर-पट छा नहीं सकते !
महाकवि तुम, तुम्हारा गीत
सच, हम गा नहीं सकते !

धरा पाकर तुम्हें जब मुसकरायी थी
बड़े उत्साह से प्रति प्राण में
नव चेतना आकर समायी थी !
तुम उसी जन-भावना के बन गये वाहक
अमर हे संत !

संस्कृति के विधायक,

हम तुम्हारी थाह जीवन में
कभी भी पा नहीं सकते !
महाकवि तुम, तुम्हारा गीत
सच, हम गा नहीं सकते !
1949

(27) प्रेमचंद

ओ कथाकार !
युग के सजग, मुखरित, अमिट इतिहास,
जन-शक्ति के अविचल प्रखर विश्वास !
दृष्टा थे भविष्यत् के ;
धनी भावों-विचारों के !
अमर शिल्पी
मनुज-उर के
अकृत्रिम, सूक्ष्म-विश्लेषक !
सितारे-तीव्र
मेघाच्छन्न जीवन के गगन के,
रूढ़ियाँ-बंधन शिथिल तुमने किये
अपनी अरुक, दृढ़ लेखनी के बल !
सभी ये थरथरायीं
काल्पनिक, प्राचीन, झूठी, जन-विरोधी
धारणाएँ, मान्यताएँ ;
धर्म-ग्रन्थों से बँधी
निर्जीव, मिथ्या, शून्य की बातें
अनोखी, खोखली
जो हो रही थीं प्रगति-बाधक !
पतित साम्राज्यवादी-शक्तियों का
नग्न-चित्रण कर
बनायी भूमिका
जनबल अथक-संघर्ष की !

ओ अमर साधक !

सतत चिंतित रहे तुम
स्वर्ग धरती को बनाने !
अभय सामाजिक सुधारक,
युग-पुरुष !
तुमको, तुम्हारी ज्योति को
क्या ढक सकेंगी काल-रेखाएँ ?
नहीं अब शेष साहस जो
अँधेरा सिर उठाए !
तुम प्रगति-पथ की
नयी ज्योतित दिशा का
मार्ग-दर्शन कर रहे हो !
प्राण में बल भर रहे हो !
1949

(28) गांधी

मानव-संस्कृति के संस्थापक, नव-आदर्शों के निर्माता,
आने वाली संसृति के तुम निश्चय, जीवन भाग्य-विधाता !

सत्य, अहिंसा की सबल नींव पर, सार्थक निर्मित किया समाज,
देश-देश में नगर-नगर में गूँज उठी नयी-नयी आवाज़ !

सदियों की निष्क्रियता पर तुम कर्मदूत बनकर उदित हुए,
विगत युगों के भौतिक-शृंग तुम्हारी धारा से विजित हुए !

नैतिक-हीना सघन निशा में ध्रुव दिया तुम्हीं ने सतत प्रकाश,
घिरे निराशा के घन में तुम ने, भर दी तड़ित-चमक-सी आश !
1945

(29) गांधी

त्रस्त दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम !

मनुज जीवन जब जटिल, गतिहीन होकर रुक गया है,

शृंखलाएँ बंधनों की तोड़ता जब थक गया है,
दमन, अत्याचार, हिंसा से प्रकम्पित झुक गया है,
एक सिहरन, नव-प्रगति के, शांति के अवतार हो तुम !

कर युगान्तर युग-पुरुष तुम स्वर्ण नवयुग ला रहे हो,
नग्न-पशुबल-कर्म गाथा तुम सुनाते जा रहे हो,
मुक्त बलिपथ पर निरन्तर स्नेह-कण बरसा रहे हो,
धैर्य, नूतन चेतना, उत्साह के संसार हो तुम !

पीड़ितों, वंचित-दलित-जन के उरों में आश भर-भर
प्राणमय, संदेशवाहक, साम्य का नव-गीत गा कर,
मुक्त उठने के लिए तुम दे रहे हो पूर्ण अवसर ;
देख मानवता जगी, दुर्जेय कर्णाधार हो तुम !
1946

(30) गांधी

प्राची के उगे तुम सूर्य
सहसा बुझ गये !
पर, तुम्हारी
फैलती ही जा रही है ज्योति !
दिग-दिगन्तों में समा,
अति शीत ईथर के
असीमित तम किनारों तक,
कि मन की सूक्ष्मतम सब
घाटियों के अंध तम से बंद
पट ज्योतित !
तुम्हारी दिव्य शाश्वत
आत्मा के तेज से
ये धुल गये
जीवन-मलिनता के
अशिव सब भाव !
युग-युग की दबी

खंडित धरित्री पर
गयी बह सत्य अमृत धार !
तुमने कर दिया
उपचार घावों का,
मनुजता के सभी
आधार दावों से !
जगत को कर दिया आश्वस्त
देकर मुक्त विश्व-विधान,
जो सुखमय भविष्यत् का
अमर वरदान !
1949

(31) गांधी

तुमने बुझते
युग-मानव के उर-दीपक में
निज जीवन का संचित स्नेह ढाल
अभिनव ज्योति जगायी है !
पर, उस दिन को जोह रहे हम
जब कह पाएँ
किरणों की आभा में जिसकी
सुन्दर जगमग झाँकी भव्य सजायी है !
मानवता की मानों हुई सगाई है !
नव-मानव शिशु को तुमने जन्म दिया,
जीने का अधिकार दिया,
निर्मल सुख शांति अमर उपहार दिया,
होठों को निश्छल मुक्त हँसी का
वरदान दिया,
कोटि-कोटि जन को रहने को
आज़ाद नया हिन्दुस्तान दिया !
जिसके नभ के नीचे
सत्य, अहिंसा का नूतन फूल खिला,
फैली बर्बर जर्जर संस्कृति के भीतर

ज्ञान-सुगन्ध हवा ;
जिसने पीड़ित जन-जन का ताप हरा !

तुमने भर ली अपने उर में
युग की सारी मर्म व्यथा !
जिसको क्षण भर देख लिया केवल
उसने समझा अब जीवन पूर्ण सफल !
याद तुम्हारी शोषित दुनिया का संबल !
एक दिवस उड़ेगा निश्चय
सोया, भूला समुदाय
तुम्हारा ही प्रेरक-स्वर सुनकर !
1949

(32) गांधी

आज हमारी श्वासों में जीवित है गांधी,
तम के परदे पर मन के ज्योतित है गांधी,
जिससे टकरा कर हारी पशुता की आँधी !

सिहर रही हैं गंगा, यमुना, झेलम, लूनी,
प्राची का यह लाल सबेरा लख कर ख़ूनी,
आज कमी लगती जग को पहले से दूनी !

पर, चमक रही है मानव आदर्शों की ज्वाला,
जिसको गांधी ने तन-मन के श्रम से पाला,
हर बार पराजित होगा युग का तम काला !

बुझ न सकेगी यह जन-जीवन की चिनगारी,
बढ़ती ही जाएगी इसकी आभा प्यारी,
निश्चय ही होगी वसुधा आलोकित सारी !
1949

(33) मालवानां जयः

वर्ष बीते दो हज़ार !
बढ़ रहे थे देश में जब
क्रूर-अत्याचार नित हूणों-शकों के,
और जनता खो रही थी
आत्म-गौरव, शक्ति अपनी,
सभ्यता, सम्मान अपना !
धर्म, संस्कृति का पतन
जब हो रहा था तीव्र गति से,
छा रहे थे भय-निराशा मेघ आ-आ !
संगठित भी थी नहीं जब
वीर मालव-जाति सारी,
राष्ट्र-गौरव भूलकर
संकीर्ण बनते जा रहे थे
मालवों के हृदय दुर्बल !
नष्ट होता जा रहा था
सब पुरातन स्वस्थ वैभव !
छा रहा था देश में
गहरा अँधेरा जब भयंकर,
रात दुख की बढ़ रही थी
नाश के साधन अमित एकत्र कर;
ठीक ऐसे ही समय
ज्योति देखी विश्व ने,
नव-जागरण के स्वर सुने !
उजड़े हुए, बिगड़े हुए,
मिटते हुए, सोते हुए
इस देश के जन-प्राण को
आ वीर विक्रम ने जगाया !

संगठन कर पूर्ण बिखरी शक्ति का
संसार को अनुभव कराया
मिट नहीं सकते कभी हम,

त्याग हम में है अपरिमित,
बाहुओं में बल अमित,
उद्घोष करते हैं
अभय मालव, अभय भारत !
अमर मालव, अमर भारत !

1945

(34) उज्जयिनी

कालिदास-विक्रम की नगरी उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम!

बहती जिसके अंतरतम में क्षिप्रा की मधु धारा पावन,
आठों प्रहर सजग रहता दृढ़ अविजित 'महाकाल'का शासन,
जहाँ शून्य भी अनुभव करता प्रतिपल 'मेघदूत' की सिहरन,
जो धरती पर उतरी स्वर्गिक वैभवशाली नव अलका बन,
जिसके कण-कण में सम्मोहन, जिसके रवि-शशि-तारक
सकल ललाम !

कृष्ण-सुदामा का स्नेहांचल जिसके जन-मानस पर छाया,
कला लिए वासवदत्ता की प्रति रमणी की सुगठित काया,
पीर मछन्दर, योगि भर्तृहरि का फैला गुरु जीवन-चिंतन,
दुर्लभ जिसकी काली-उजली शीतल सुख-रातों का बंधन,
शांत, सत्य, शिव, सुन्दर जीवन, अक्षय नैसर्गिक शोभा
अभिराम !

1950

(35) खेतिहर

(खेत बीच-बीच मे फूस की पुरानी जर्जर झोंपड़ियाँ। दिन का जलता हुआ तीसरा प्रहर।

(किसान गुनगुनाता है)
उठाओ हल, चलाओ हल !
कि गरमी पड़ रही बेहद
(आकाश की ओर देखकर)

आज आकर ही रहेंगे
मेह के बादल !
चलाओ हल, चलाओ हल !

पत्नी से
चलो तुम भी
उगानी है अरे मक्का,
अकेले बन न पाएगा
तुम्हारा चाहिए धक्का !

पत्नी
(हैरान-सी होकर)
मगर बिटिया
पड़ी बीमार है ज्वर से,
तुम्हें यह सूझता है क्या ?
दिखायी भी नहीं देता
कि वह बेहोश-सी कैसी
पड़ी चुपचाप
बोलो किस तरह उसको
अकेली छोड़कर जाऊँ ?
चढ़ाना है तुम्हें परसाद माता का
कहीं से आज पैसे चाहिए ही,
खेत को छोड़ो
कहीं से दाम की ऐसी जुगत सोचो
कि देवी पा सकें अब भेंट !
कि देवी पा सकें अब भेंट !

किसान
बढ़ता जा रहा है ब्याज,
दस से सौ रकम हा,
हो गयी है आज !
पटवारी हमारे खेत पर हावी,

फ़सल सारी उसी ने ली
कराकर कोठरी खाली !
खड़े हैं हम लुटा कर घर,
भरे ये हाथ अपने झाड़कर !
फिर भी न देगा आज कोई भी
हमें टुकड़े ज़रा से हाय ताँबे के
वही तो धर्म का अवतार पटवारी
बताता है स्वयं को जो
भयंकर रूप धारण कर
हमें दुतकार देता है,
नहीं है आस कोई आज ऋण देगा !

बिटिया
अरे हा !
माँ लगी है भूख
क्या होगा बचा कुछ दूध ?
(शांति ! बिटिया दूध का अभाव समझकर धीमे से)
पानी ही पिला दे, माँ !

(माँ पानी देती है। किसान आवेश और दृढ़ता के स्वर में)
अभी लाया रुको जी दूध... !
(विवशता के कारण कंठावरोध। पार्श्व-ध्वनि)

मेहनतकश उठो !
बलवान हो तुम,
हल चलाकर ही
उगा सकते अभी सोना,
मिटा दो आततायी का
सभी मिथ्या भरा टोना,
अटल विश्वास जीवन में
तुम्हारा हो सदा संबल,
उठाओ हल, चलाओ हल !

किसान (चकित-सा)
धरती गा रही है गीत !
सुनता हूँ नया संगीत !
चलाओ हल,
चलाओ हल !
1945

(36) खेतों में

(हरे-हरे खेतों से परिपूर्ण एक पहाड़ी ढाल। पास ही एक छोटी, सँकरी नदी बह रही है ; जिसके दोनों किनारों पर पेड़ों की सघन कतारें हैं। सामने के भरे हुए खेतों में छह-छह युवतियों की दोपंक्तियाँ हाथ में हँसिए लिए दिखाई देती हैं और पहली कतार एक स्वर में गाती है।)

पहली कतार
आओ सखी, आओ सखी, आओ !
हरे हैं खेत
हरा है मन
भरा यौवन !

चलो री सखि !
शिखर पर चढ़
खुशी के ज़िन्दगी के,
आश के गाने
पवन के साथ मिलकर
दूर तक विस्तार कर स्वर प्राण का गाएँ ।
नयन में
फूलती-फलती धरा का स्वप्न भर लाएँ ।

दूसरी कतार
आओ सखी, आओ सखी, आओ !
सुनो, ये खेत हमसे कह रहे हैं क्या !
हिलाकर शीश,

ये संकेत समझो दे रहे हैं क्या ?
हरे हैं ये
भरे हैं ये,
(एक पल रुक कर)
पर, न जाने क्यों डरे से ये ?

(खेतों में से अदृश्य पुरुष का स्वर)
सुनो, सुनो, सुनो,
सुनो, सुनो, सुनो,
चोर डाकुओं से सावधान !
कर रहे कि जो
हरे-भरे चमन मसान !
दैत्य से किसान
सावधान, सावधान !

(दोनों कतारों की स्त्रियाँ हँसिए को शत्रु पर प्रहार करने की मुद्रा में)

कौन है ? कौन है ? कौन है ?

अदृश्य पुरुष
तमाम ये ज़मीनदार,
औ' महाजनी प्रहार
टूटने को हो रहे तैयार ?

किसान
पहला पर, हमें है भय नहीं इसका,
संगठित हैं हम !

दूसरा ज़माने को बदलने के लिए !

तीसरा पीड़न और अत्याचार का साम्राज्य

धरती पर सुलाने के लिए !

समवेतसंगठित हैं हम !
संगठित हैं हम ! !

(यकायक खेत लहलहाने लगते हैं। पृष्ठभूमि में वृद्ध किसानों की छायाएँ नज़र आती हैं, जिनके हाथों में हँसिए, कुदाली, गेहूँ की बालें और झण्डे हैं।)

(पृष्ठभूमि का समवेत स्वर)

माना, भार गुलामी का बरसों ढोया,
पर, जाग नहीं क्या दाग़ पुराना धोया ?
अब तो हमने सोना बोया,
जीवन का दुख सारा खोया ।

1945

(37) अभियान

(हज़ारों सुसज्जित सैनिकों का समूह। सभी हाथों में बन्दूकें लिए हुए हैं। सभी की आँखें लाल हैं। एक घुड़सवार तेज़ी से आता है और बिगुल बजाता है। बिगुल के बन्द होते ही स्टेज के पीछे से गान की सशक्त ध्वनि आती है। सैनिक सावधान होकर सुनते हैं।)

अभियान करो !
अभियान करो !

किरणें जैसे गिरतीं तम पर,
बहती धारा जैसे बढ़ कर,
वैसी दुर्दम दृढ़ शक्ति लगा
चिर शोषित जनता को आज जगा,
व्यूह रचो,
अभिनव व्यूह रचो !

भक्षक संस्कृति की छाती पर
फ़ौलादी आज क़दम रखकर
निर्भय हो

भीषण अभियान करो !
युग-युग की पीड़ित जनता का
त्राण करो !
दुख, दैन्य, निराशा, जड़ता, तम
जीवन का सब
आज हरो !
अभियान करो,
अभियान करो !

(स्वर बन्द हो जाता है। एक क्षण सन्नाटा रहता है। दो-एक सैनिक उत्साहित हो कह उठते हैं)

भरता साहस विद्युत जैसा
किसने आह्वान किया ऐसा !

अन्य सैनिक
क्या परिवर्तन की बेला ?
क्या नव-जीवन की बेला ?
बदलेगा क्या जीवन का क्रम ?

पार्श्व स्वर
है सत्य,
नहीं यह किंचित भ्रम !
दूर क्षितिज पर
लपटें उठतीं !

(सभी सैनिक क्षितिज की ओर देखते हैं और स्वीकृति के स्वर में उत्तर देते हैं।)

हाँ, दीख रही हैं
बढ़ती-बढ़ती !
बादल मटमैले धूला के

दिशा-दिशा में फैल गये हैं !
आओ बढ़कर
अभियान करो,
हिम्मत से दृढ़ व्यूह रचो,
गतिरोधी ताक़त से
न डरो,
न डरो !
अभियान करो,
अभियान करो !
सम्वेत
दुश्मन पर,
आज विपक्षी पर,
जन-द्रोही पर,
अभियान करो,
अभियान करो !
1945

5

बदलता युग

रचना-काल सन् 19431952

प्रकाशन सन् 1953

कविताएँ

1 गिर नहीं सकती
2 मिटाते चलो
3 कुर्बानियाँ
4 तूफ़ान
5 सर्वनाश
6 बंगाल का अकाल
7 नौ-सैनिक विद्रोह
8 जय हिन्द
9 विकल है देश
10 साम्प्रदायिक दंगे
11 आज़ाद मस्तक को उठा लेता
12 दमित नारी
13 साम्प्रदायिक विष
14 हम एक हैं
15 एकता
16 हिन्दू-मुसलमान
17 संयुक्त बनो
18 विवशता में
19 युद्ध-क्षेत्र पर
20 देशी रजवाड़े
21 मलान सावधान
22 अफ़सोस है
23 विरोधी शक्तियाँ
24 मिल मज़दूर
25 शराबी
26 शराबी से
27 सोओ नहीं
28 स्थितियाँ और द्वन्द्व
29 जनवाणी
30 बदलता युग
31 नया प्रकाश
32 आज तो
33 बदल रही है ...
34 मुसकान के रंग
35 मेरे देश में
36 रक्षा
37 धरती की पुकार
38 मालवा में अकाल

39 अमन की रोशनी
40 जंगबाज़
41 ज़िन्दगी कैसे बदलती है
42 नयी नारी
43 मुक्ति-पर्व

●

(1) गिर नहीं सकती

गिर नहीं सकती कभी
विश्वास की दीवार !
निर्मित तप्त जन-जन के लहू से,
वज्र-सी / फौलाद-सी
दृढ़ हड्डियों से;
नींव के नीचे पड़े
कातर अनेकों मूक जन-बलिदान !

यह विश्वास
जीवन के नये भवितव्य का
धुँधला नहीं निस्सार !
गिर नहीं सकती कभी
अगणित प्रहारों से
नये विश्वास की दीवार !

वर्षों बाद
की निविड़ान्धकार सुरंग
जन-चेतना की शक्ति से
द्रुत पार,
ज्योतिर्मय हुआ संसार,
धधका सत्य का अंगार,
लोहे-सी खड़ी
जन-शक्ति की दीवार !

त्रस्त-शोषित-सर्वहारा-वर्ग
रक्षा के लिए
अपना उठाये सिर;
चुनौती दे रही उसको
सतत साम्राज्य-लिप्सा-रक्त-नद में
वर्ग जो डूबा हुआ।

वह गिर नहीं सकती कभी
जन-संगठित-बल की
नयी दीवार !
टकरा लौट जाएगी
विरोधी धार !
बारम्बार लुण्ठित,
खा करारी हार !
1950

(2) मिटाते चलो

सदियों के बंधन मिटाते चलो तुम,
तम के ये परदे हटाते चलो तुम,
अवरुद्ध राहों के पत्थर सभी ये
निर्झर सदृश सब उड़ाते चलो तुम !

विष दासता का पिलाया गया जो,
शोषण का कोल्हू चलाया गया जो,
असफल सभी नीति ऐसी करो
जिससे उठे सिर, दबाया गया जो !

जन-युग समर्थक, प्रजातंत्र का बल
शत-शत स्वरों से यह गुञ्जित हो प्रतिपल,
जनपद जगे ले विजय की मशालें
श्रम से अभावों के फट जायँ बादल।
1947

(3) कुर्बानियाँ

विश्व के परतंत्र देशों की
जटिल दृढ़ शृंखलाएँ
टूटने को
आज झन-झन बज रही हैं !
आज प्रतिक्षण रण,

अमित कुर्बानियाँ
स्वातन्त्र्य-हित
प्रतिपल मचल कर हो रही हैं !

सिर्फ़ -
मरघट में चिताएँ हैं
शहीदों की,
नहीं ज्वाला बुझी,
धू-धू भयंकर और भीषण
हो रही है,
जल रही है,
बढ़ रही है !

यह उमड़ता ज्वार जनता का
कहीं पर रुक सका है ?
स्र
अवनि गिरते हुए तारक सरीखा,
क्या किसी भी घोर रव से
दब सका है ?

युद्ध की आवाज़,
एटम बॉम्ब का है नाम !

पर, ललकार
इण्डोनेशिया छोड़ो,
भगो,
बर्मा व हिन्दुस्तान छोड़ो !
एशिया क्या
विश्व के लघु राष्ट्र सारे,
एक बिगड़े सिंह जैसे
जग उठे हैं !
एक घायल साँप जैसे

फन उठाये दीखते हैं !
अन्त है फ़ासिज़्म का,
औ' नष्ट होने जा रही हैं
विश्व की साम्राज्यवादी शक्तियाँ !

शोषण दमन का चक्र
जो अगणित युगों से चल रहा था,
आँख मींचे
फेक्टरी के बॉयलर में
कोयले के स्थान पर
श्रम-जीवियों के,
शोषितों के,
पद-दलित नत नीग्रों के
प्राण झोंके जा रहे थे
स्वार्थ-लोलुप-देश निर्दय !

आज वे सब
फड़फड़ा कर उठ रहे हैं !
घृणित दुखदायी हुकूमत को
पलटने उठ रहे हैं !

जो खड़े इनके शवों पर
तुच्छ रजकण से गये बीते समझकर
और बन कर बेरहम
करते रहे मर्दित पदों से,
लड़खड़ा कर गिर रहे हैं
एक करवट से !

उठे अब धूल से औ' रक्त से रंजित,
चाहते -
अधिकार, आज़ादी, व्यवस्था।
पतित मानव की प्रगति का

चित्र सुन्दर : रूप अभिनव।

साम्य का संगीत गूँजे,

रोक बन कर जो खड़े हैं
आज -
तूफ़ानी प्रबल आघात,
विप्लव ज्वाल,
प्रतिपल दृढ़ हथौड़े से
निरंतर चोट खाकर,
एक पल में बुद्बुदों-से,
आह भर
मिट जाएंगे।

ध्रुव सत्य
जनता की विजय।
संक्रांति के जो इन क्षणों में
छा रही जड़ता, निराशा
वह नहीं वातावरण होगा,
प्रगति की आश का
दुर्दम प्रभंजन
विश्व के पीड़ित उरों में
दौड़ जाएगा प्रखर बन।
1947

(4) तूफ़ान

समय संक्रांति का,
असफल निराशा का,
अधूरे स्वप्न ले मानव,
अधीर अशांति में
प्रतिपल विकल साँसें,
दमन के दिन

रहे हैं गिन,
रहे हैं गिन।

मिटा समुदाय सारा
खा गया है ज़ंग,
दीमक और फोड़ों से
हुआ जर्जर, हुआ जर्जर !
बिगड़ दोनों गये हैं लंग्स।

हिंसक और भक्षक
व्यक्ति का भीषण,
शुरू अब हो गया है नाच,

नंगा नाच !
जिसके पैर के नीचे
मनुजता का दबा है वक्ष,
क्रन्दन की पुकारें और आहें
बन रहीं
तबलों-मजीरों की धमक,
निर्दय कुचलता जा रहा है
आज !
पैरों से मसलता जा रहा है
आज !
दोनों हाथ जो अपने
डुबोकर रक्त में
होली मनाए,
क्रूर भूतों-सी हँसी हँसता
ज़मीं पर
वार कर हर बार
निर्मम बन
गिराता है रुधिर की धार !
सारा लाल है संसार !

सारा चीखता संसार
रो-रो आह भरकर आज
देखो बढ़ रहा तूफ़ान !
करने विश्व को आज़ाद,
देने को नया जीवन,
बसाने साम्य की दुनिया
मिटाने दुःख की घड़ियाँ।
युगों की
सख़्त काली लौह की कड़ियाँ
बजीं झन-झन,
बजीं झन-झन !
हुईं सब ग्रन्थियाँ ढीली,

खुले बंधन !
कि बोला अब नया इंसान
जनता राज ज़िन्दाबाद,
जनता को मिले अधिकार !'

सारे विश्व में
स्वातन्त्र्य झंझावात
बहता तोड़ता
प्राचीन-चिन्तन बाँध,
राजा, काल्पनिक भगवान, डिक्टेटर
हुकूमत के ज़माने के
कफ़न पर कील अन्तिम
ठुक चुकी है आज।
जीवन जागरण के गान के स्वर
विश्व के प्रत्येक कोने से
सुनायी दे रहे हैं आज !
आया मुक्ति का तूफ़ान !
पूरे हो रहे अरमान !
अभिनन्दन !

प्रगति की शक्तियाँ सारी
तुम्हारे साथ !
दुर्दम मुक्ति का तूफ़ान !
निश्चय जीत का वरदान !
बढ़ता आ रहा तूफ़ान !
1948

(5) सर्वनाश

हिल गया तल तक
कि चारों ओर,
चीखा जन-समुन्दर घोर !

कण-कण ध्वस्त पर
क्रोधित हुए हैं लाल भीषण नेत्र,
जन-जन का उबलता ख़ून,
हिंसक बन गये कानून !
सम्मुख क्रूरता नर्तन
पतन का आज चरमोत्कर्ष
भीषण दानवी संघर्ष है दुर्द्धर्ष !

दुर्बल बाहुओं में
शक्ति का संचार,
नूतन वेग !
दृढ़ इंसान जम कर छीनता अधिकार !
स्वर - युग-धर्म का गूँजा,
मनुज सन्मुख प्रहारों से बिगड़ जूझा,
सबल 'ग्रेनाइट' से बंधन झुके,
रज-मेड़ से टूटे बहे
'लोयस' सदृश - जिसका न बस,
आ चीर दे कोई,
उड़ दे देह
बहता जल, मृतक-सा मेह !

घना कुहरा समाया
दिग-दिगन्तों में,
कि चारों ओर - आये घोर

दृग को बन्द करते अंध,
क्रोधित बन गरजते घन
घुमड़ते हैं, उमड़ते हैं,
कि दुर्दम साथ में
तूफ़ान भी आया !
पकड़ लो प्राण !
मेरे हाथ,
दुर्गम पंथ से चलकर
भयंकर नाश का सामान लाया
आज यह तूफ़ान !

कहते कापुरुष हैं डर
कि है सब व्यर्थ
सारी शक्ति, साहस अर्थ !
यह क्षण में कुचल देगा,
अभी देंगे दिखायी हम
अवनि-लुण्ठित, धराशायी !
हमारी चीख की आवाज़ भी देगी
नहीं बिलकुल सुनायी।

क्योंकि ये हुंकारते हैं मेघ,
भीषण सनसनाती आँधियाँ,
काले क्षितिज पर
कड़कड़ाती बिजलियाँ,
औ' शीत की तलवार-सी है धार,
जिसमें सब जकड़ कर हिम
खोकर चेतना जड़वत्
बना निष्क्रिय

हमारे प्राण का कंपन
हमारी धमनियों का रक्त !
1948

(6) बंगाल का अकाल

बंग भू पर हो रहा क्रन्दन-मरण व्याकुल स्वरों में !

घुल रहे हैं किस तरह विद्रोह रोके चिर-बुभुक्षित,
होश में हैं मौन मुरदे आज रोते क्यों मरण हित ?
वृन्तच्युत कोमल तड़पते भूख से शिशु-प्राण अंबुज,
पेट की ख़ातिर यहाँ सर्वस्व नारी बेचती निज,
और हैज़ा दीखता है आज कितने ही नगर में,
हैं बिछी अगणित कतारें हाय! लाशों की डगर में,
तड़पते अरमान इनके रोटियों की चाह में ही,
सो गये हैं जो सदा को एक व्याकुल आह में ही,
कौन देखे ? कौन रोये ? सड़ रहे मानव घरों में !

कह रहा जग आज सारान्याय क्या, अन्याय है
आज का शासन कहाँ असहाय है, निरुपाय है ?'
ओ मरण के अस्थि-पंजर ! आज बल अपना दिखा दो,
घोर विप्लव ही मचा दो, आज सागर को हिला दो,
मौन है उच्छ्वास कह दो आज उनसे, 'पुनः जागो !'
छीन लो अधिकार अपने, दीन बनकर कुछ न माँगो,
क्रूर अत्याचार जग के साम्य के पथ से हटा दो,
तोड़ युग के पूर्ण बंधन क्रांति की ज्वाला जला दो !
रूप ऐसा ओ प्रवर्तक ! आज हों लपटें करों में !

मंदिरों ने, मसजिदों ने क्या किसी को भी बचाया ?
सांत्वनामय धैर्य इनका क्या किसी के काम आया ?
धर्म के पोथे करोड़ों सड़ रहे हैं नालियों में,
आज चाँदी के न टुकड़े हैं प्रसादी थालियों में,
ईश पर विश्वास कैसा ? कौन ले अवतार आया ?

ढोंग मंदिर, ढोंग मसजिद भूल यह, 'गुण गा न पाया।'
भाग्य का लेखा ? नहीं, वह था यही केवल बहाना
लूटना या चूसना था, या हमें उल्लू बनाना,
हाय ! मानव अधमरे ही, बह रहे हैं निर्झरों में !

हो रहा है नृत्य पथ पर, हो रहा रोदन कहीं पर,
बन रहे सुख-दुख भयंकर, मूक है जीवन यहीं पर
कह उठेगी मूर्ख दुनिया, 'विश्व का ही यह नियम है,
भाग्य में इनके लिखा था, ईश की लीला विषम है।'
भूल है, जो कह रहे हैं, स्वार्थ का संसार उनका,
चल रहा है यह युगों से खोखला व्यापार उनका,
आज अंतिम दृश्य देखो नाट्य-घर बंगाल में आ,
जाग विप्लव, जाग नवयुग अस्थि के कंकाल में आ,
आज धड़कन, आज कंपन हो बुभुक्षित के उरों में !
1943

(7) नौ-सैनिक विद्रोह

मचली हिन्द सागर में सबल विद्रोह की लहरें
हिन्दुस्तान को छूने चली आतीं बिना ठहरें !

जब बंगाल की खाड़ी, अरब सागर हिले डोले
सदियों के दमित सीने नया दृढ़ जोश पा बोले !

लेंगे छीन आज़ादी कि हममें शक्ति है इतनी,
लो प्रतिशोध युग-युग का कि जुल्मों की कथा कितनी !

नौ-सैनिक चले मिलकर जहाज़ों को उड़ाने को,
भीषण गोलियाँ बरसीं गुलामी को मिटाने को !

'गोरे' आततायी सब छिपे डरकर सभी भागे,
दुश्मन कौन था जो आ सका बढ़ कर वहाँ आगे !

जन-जन मुक्ति-आन्दोलन मशालें जल उठीं अगणित,
पशु-बल जा छिपा उल्लू सरीखा बन भयातंकित !

नव-आलोक से सारी दिशाएँ जगमगायी थीं !
नूतन चेतना से सब दिवारें डगमगायी थीं !

धक्का शक्तिशाली जब लगा जन-तंत्र का नारा,
सागर पार सिंहासन गया हिल राज्य का सारा !

सड़कों पर पड़े अगणित क़दम फ़ौलाद से दुर्दम,
जाग्रत देश के जन-जन अथक लड़ते रहे हरदम !

कीं क़ुर्बानियाँ तुमने उठायी आँधियाँ भीषण
जिससे कट गये जकड़े गुलामी के सभी बंधन !

लपटें जल उठीं दुगनी, पड़ा जब-जब दमन-पानी,
औ' प्रतिरोध भी दुगना बढ़ा, की ख़ूब मनमानी !

यह साम्राज्यवादी गढ़ विकल हो बौखलाया था,
जिसने शक्ति का कण-कण कुचलने में लगाया था !

लेकिन बुझ न पायी जो वतन ने आग सुलगायी,
बरसों की बढ़ी जिसमें पुरानी जुड़ गयी खाई !
1946

(8) जय हिंद!

हिंद फौज़ का स्वतन्त्र वीर
गिरि, समुद्र, वन विशाल चीर,
मृत्यु-द्वार-सा मिला समीर,
आफ़तें कठिन, चरण रुके न
पंथ पर, सदा बढ़े प्रवीण !

मुक्त राष्ट्र का सप्राण गीत,
जागरण प्रकाश में अतीत,
पर्व है महान, यह पुनीत,
हिन्द की विजय सही, जहान
रूप बन चला स्वयं नवीन !
1946

(9) विकल है देश

गुलामी से विकल है देश, यह निष्प्राण-सा सारा,
उदासी और असफलता, पलायन का हुआ नारा !

दुखी, ठंड़ी मरण साँसें, मलिन जीवन, अमित बंधन,
कृशित तन, नग्न, मरणासन्न, कुंठितमन-निराशा क्षण !

प्रगति अवरुद्ध, विपदा लक्ष, शोषण है मनुज बंदी,
मिटा बिगड़ा समाजी तन, पतन की है लहर गंदी !

दशा युग की करुण है, आज वाणी में नहीं बँधती,
नहीं बँधती, विषम है साधना स्वर में नहीं सधती !

पड़ी कटु फूट आपस में, नहीं है मेल किंचित भी,
निरंतर बढ़ रहे नव दल, विभाजन है नवीन अभी !

कहाँ जनता ? पड़ी निर्जीव-सी बनकर, घिरा है तम,
निजी कुछ स्वार्थ में अंधे मनुज बस पूजते कि अहम् !

सिपाही छोड़ दो आलस, कहीं दुश्मन न खा जाये,
नहीं अब नींद के झोंके, बुरी हालत न आ जाये,

तुम्हारे देश के दीपक बुझाए जा रहे हैं जब,
नज़र के सामने लाकर मिटाए जा रहे हैं जब !

खड़े हो नाश के अन्तिम किनारे पर, सरल गिरना,
कि दुश्मन एक धक्के से मिटा देगा यहाँ वरना !
1947

(10) साम्प्रदायिक दंगे

नगर-नगर व गाँव-गाँव में, दहक रही यह आग है,
डगर-डगर व पाँव-पाँव पर, भभक रही यह आग है !

कि आसमान चीरती हुई, विनाश की हवा चली,
हुआ अधीर, लाल-लाल बन जहान, सृष्टि सब जली,

कराहती व चीखती सनी हुई यह रक्त से गली-गली,
मनुज विवेक हीन, हिंस्र हो गया कठोर, जंगली !

कि ख़ून आँख में, कटार का कटार से जवाब है,
कि बस, यहाँ स्वच्छंद मज़हबी गँवार ही नवाब है !

न दीखती कहीं मनुष्य में ज़रा समीप लाज भी,
वही लिए कराल आदि जानवर शरीर आज भी !

असभ्य मद-प्रमत्त डोलती हैं हिंसकों की टोलियाँ,
सुलग रही असंख्य बेक़सूर व्यक्तियों की होलियाँ !

जलन के दर्द से कराहती औ' काँपती वसुन्धरा
कि आज एक बार फिर जगी चँगेज़ की परम्परा !

कि आज एक बार फिर उखड़ रहे हैं बेशुमार घर !
कि आज एक बार फिर दिलों में छा रहा निरीह डर,

उतर रहे हैं मौत घाट लाख-लाख बालकों के सर
कि खा रही पछाड़ विश्व-माँ लुटी हुई सिहर-सिहर !

मनुष्य का कठोर रूप यह भयावना है किस क़दर,
कि धर्म जाति गत प्रभाव का ज़हर उगल रहा ग़दर !

स्वदेश छोड़, अश्रु साथ ले ये चल पड़े हैं काफ़िले
अनेक रोग ग्रस्त, चोट त्रस्त हैं, अनेक अध-जले !

कि रोक लो शहीद बन तमाम औरतों की आबरू !
महात्मा, पटेल, शेख, राष्ट्र-कर्णधार नेहरू !

रुको प्रगति, विकास और राष्ट्रीयता के दुश्मनो !
गुलाम-वृत्ति अब नहीं, रुको स्वतंत्रता के दुश्मनो !

तुम्हें क़सम है चाँद की, तुम्हें क़सम है पाकतम क़ुरान की,
तुम्हें क़सम ज़मीन की, तुम्हें क़सम है आसमान की !

मदद करो निरीह की उठो न, क्योंकि कर्बला के वीर हो,
अरब महान देश के बहादुरो! उठो कि तुम अमीर हो !

शिवा-प्रताप की परम्परा के पुत्र तुम बदल गये,
महानता के स्वप्न को लिए हुए कहाँ फिसल गये ?

तुम्हीं वतन की शान-बान को गिरा रहे, मिटा रहे,
कि हिन्द की उदार भावना स्वयं घटा रहे !

कि मेल से रहो, यही करीम और श्याम की पुकार है,
कि एक हिंद हो यही रहीम और राम की पुकार है !
1947

(11) आज़ाद मस्तक को उठा लेता

लूट हिंसा का मनुज पर जब नशा छाया,
रूप ले हैवान का मज़हब उतर आया,
रक्त की इन्सान की यदि प्यास बुझ जाती

ख़त्म हो जाती बनी नेतागिरी माया !

इसलिए विद्वेष का झण्डा उठाया है,
क़त्ल करने का घृणित नारा लगाया है,
मतलबी साम्राज्यवादी चंद लोगों ने
देश को मेरे क़साई घर बनाया है !

आग की लपटें गगन में घिर घहरती हैं
जल रहे गृह, रूह जन-जन की सिहरती है,
मौत की आवाज़, मनहूसी समायी है,
भूमि पर सरिता हलाहल की लहरती है !

आज तो गुमराह पागल झुण्ड मदमाते
शस्त्र ले फरसे छुरे हिंसक, चले आते,
दृश्य भीषण नाश का बर्बर मचाते जो
गीत, पर, अल्लाह या हनुमान का गाते !

मिट गये सब वृद्ध नारी शिशु व रोगी तक,
शर्म है जो छीन जीने का लिया है हक़,
आततायी शक्ति ने हा! क्रूर निर्दय बन
स्वार्थ के हित में मिटाये शांति के साधक !

भग्न औ' वीरान कर डाले अनेकों घर,
यन्त्रणा निष्ठुर रुधे हैं आज भय से स्वर !
जल रहे धू-धू नगर सब ग्राम जीवित जन
चाहिए उजड़े हुओं को त्राण का अवसर !

क्या पता था देश का यह भाग्य आएगा !
दूर हो अंग्रेज़ बैठा मुसकराएगा !
काट डालेंगे गले, लड़ आज आपस में !
हिंद की औलाद को यह रूप भाएगा !

आँधियाँ बंगाल के नभ में उठी थीं जब
रोक लेना था मगध प्रतिशोध का विप्लव !
फिर न पड़ती देखनी पंजाब की पशुता,
और यह सीमान्त के निर्दोष मानव शव !

आज सड़कों पर खड़ी है मौत की दहशत,
नग्न भूखी राह में जनता पड़ी आहत,
क्षीण जर्जर त्रस्त दुर्बल उन्मना व्याकुल,
आत्म-गौरव, आत्म-वैभव नष्ट है आनत !

व्योम में उठती मुसीबत की किरण चमकी !
रक्त की छाया दिशाएँ लाल हो दमकीं,
फ़ैसला है आज किस्मत की अनेकों का
ज्वाल बढ़ती जा रही है, जो नहीं कम की !

सृष्टि का संघर्ष क्षण प्रत्येक धड़कन का
स्नेह पावन से मिटा दो शेष मद रण का,
हो, चुका नरमेध मानवता जगो, गाओ !
मुक्ति का संगीत, आशा गीत जीवन का !

आज तो बेचैन अस्त-व्यस्त है तन-मन
यह न होनी बात, नाशक देख आयोजन !
गर्व से आज़ाद मस्तक को उठा लेता,
लड़ गया होता विषमता से कहीं जीवन !
1948

(12) दमित नारी

मिट्टी-मिट्टी बोल रही है !
बोल रही हैं नंगी काली ऊँची चट्टानें,
बोल रहे हैं सूखे-सूखे रक्तिम नाले,
चीख़ रही है सरिता-सरिता

लानत है इंसान !
किया तुम्हीं ने नारी पर
अत्याचार प्रहार,
लानत है
युग-युग की चिर संचित संस्कृति,
जिसकी पशुता ने
नारी की अस्मत पर हाथ उठाया !

लानत है मज़हब
जो बनता मानवता का पहरेदार,
जिसने दुर्बलता पर हावी हो,
आज किया मनमाना भक्षक व्यापार !
घृणित ख़ुदा के बोल सभी ;
क्योंकि केवल वे ही ज़िम्मेदार
कि जिनने जन-जन की नस में
भर दिया भयंकर विष
जो निकला फूट
मनुजता की नींव हिला,
जिसकी आज विषैली ज्वाला
कोने-कोने में फैल गयी है;
मन के नैतिक बंधन
जिसने ढीले कर डाले हैं !
सोच नहीं सकता कोई,
पागलपन के उठे बगूले
काँपी धरती, कण-कण काँपा,
आसमान से तारा-तारा काँपा,

पर, रुक न सका
हैवानों का चलता चक्र अरे !
जिसने नारीत्व
धरा पर लुण्ठित कर,
माँ पर हाथ उठाया,

बना दिया विधवा-विधवा !
पुत्र विहीना !
घायल-घायल
रो-रो सूख गये हैं जिनके आँसू,
सूख गये हैं केश कहीं
ख़ूनी धारों से,
सूख गये हैं होंठ !
तुम्हारी निर्मम आवाज़ों से

भयभीता नारी
गिन-गिनकर
साँसें छोड़ रही है !

वह देश असभ्य -
किये जिसने ऐसे काम,
वह इंसान नहीं इंसान,
पशु से भी बदतर है !
जिसने मातृत्व किया पद-मर्दित,
नारीत्व किया अपमानित,
निर्बल से खिलवाड़ !
1948

(13) साम्प्रदायिक-विष

आज नूतन शक्ति का संचार !
नस-नस में फड़कता जोश
दुर्दम मानवी दृढ़ !
होश की करवट
कि देखा सामने मरघट,
पड़ीं लाशें मनुज की,
चीत्कारें !

ध्वस्त गृह अट्टालिकाएँ,

धूल उड़ती,
नाश की चलती हवाएँ,
ख़ून के सागर
धरा पर बह रहे,
ज्वालामुखी लावा उगलते,
हो रहा है मृत प्रलय
ताण्डव प्रखर,

गिरते धरा पर शीश अगणित
वार से होकर पराजित,
अवनि लुण्ठित, चरण मर्दित,

थूक ठोकर से मसलता
आदमी जब आदमी को
तब जगे हैं प्राण !
उन्मद वेग ज्वाला
सर्व भक्षक क्रूर लपटें
आ गयीं जब, खा गयीं जब,
युग-युगों की शक्ति,
संचित धन, मनुजता !

जो कभी सोचा न हो मन में
कभी देखा नहीं हो स्वप्न तक में,
क्रूर बर्बरता, हिला दे दिल !
जगत इतिहास के
सौ-वर्ष तक के युद्ध
फीके बालकों के खेल
बन कर रह गये, उपहास !
होगा, सच, नहीं विश्वास !
हिंसा का, मरण अतिरेक !
घिस गया चंगेज़ !
फीका पड़ गया तैमूर !

औ' औरंगज़ेबी जुल्म ढह
जलियानवाला बाग !
हिंसक आततायी
लोमहर्षक, क्रूर,
फैली रोशनी के, सामने
'सरवर गुलामी'[1] जुल्म !
(1. पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) का तत्कालीन साम्प्रदायिक नेता।)
1947

(14) हम एक हैं

तूने कर दिया बरबाद
मेरे देश का वैभव
कि मेरे देश का गौरव !

मुझे है याद
मेरी भूमि पर बहता कभी था
नीर-सा घी-दूध,
जैसे आज बहता
युद्ध के मैदान में
पेट्रोल अथवा ख़ून !
जन-जन तृप्त थे
निर्श्चित,
जीवन में सुखी !

पर, आज
तूने कर दिया मुहताज,
भूखों मार !
दुख, आतंक,
गोलों और तोपों का भरा भंडार !

लड़ते देश के बालक
झगड़ गोबर सरीखी चीज़ के ऊपर !

धृणित !
तूने जमाया पैर माँ के वक्ष पर,
जिसके करोड़ों लाल
हिन्दू और मुस्लिम को लड़ाया,

फूट का बो बीज,
भू-सम्पत्ति का विक्रय !

नया भावी मनुज,
जब नीति तेरी
याद किंचित भी करेगा तो
उबलकर क्रोध से अपने,
भरे प्रतिशोध ज्वाला,
दाँत लेगा पीस !
अपने बाप-दादों की
मरण-सी बेबसी पर,
अश्रु की धारा बहाकर !
तोड़ देगा गर्व सब !

पर, आज तो ये आँख मेरी
देखतीं वह दृश्य
जीवन में
कभी भी स्वप्न तक में
जो न सकता सोच !
क्या मिट सभ्यता सारी गयी ?
वर्षों हमारी साधना का -
एकता का प्रयत्न,
सब साहित्य का वरदान,
मिट्टी हो गया ?

होना असम्भव है !
रुकेगी यह नहीं आवाज़

'सब इंसान जग के एक हैं !
हम एक हैं !
1948

(15) एकता

कर्बला प्रयाग है,
प्रयाग कर्बला !
कुरान वेद की नसीहतों से
व्यक्ति का करो भला !
टले अशुभ घड़ी
व मृत्यु भय बला !

कि जाति-द्वेष छोड़कर उठो,
कि धर्म-द्वेष छोड़कर उठो,
वतन की एकता के वास्ते,
वतन की नव-स्वतंत्रता के वास्ते !

महान हिंद की महानता बनी रहे !
उदार हिन्द की उदारता बनी रहे !

सभी दिलों की चाह जो
वही सतत किये चलो !
महान ध्येय के निमित्त तुम
जलो, जलो, जलो !
1948

(16) हिन्दू-मुसलमान

एक है सबका ख़ुदा, जिसने बनाये जीव सारे !

ख़ून की नदियाँ बहाकर
देश की रक्षा न होगी,
धर्म का ले नाम यों पथ-

भ्रष्ट मानवता न होगी,
सभ्यता का हार जिसमें
उच्च भावों को पिरोये
हैं युगों से क़ीमती मोती
अनेकों प्राण खोये।
एक होकर ही रहेंगे, हिन्द तेरे जन-सितारे !

भूत सिर पर छा गया
हैवानियत का क्रूर निर्दय,
शक्ति का आह्वान कर
जागो, मनुजता की कहो जय !
छोड़ संयम हो गये सब
क्रोध से हिंसक व निर्मम
और भाई का गला भाई
गिराता है, यही ग़म,
याद करलो, उस ख़ुदा को हैं सभी जन-प्राण प्यारे !
1948

(17) संयुक्त बनो

अपने ही हाथों से अपने हमने आज कुल्हाड़ी मारी,
ग़लती पर ग़लती कर आज जुए में जीती बाज़ी हारी,
ले न सके हम वह जिसके पाने के युग-युग से अधिकारी;
दिल टूक-टूक होता है, यह निर्मम कितनी रे लाचारी !
मेरा देश बँटा है टुकड़ों में अनगिन,
समझूँ जन-जन की आज़ादी या दुर्दिन ?

आज़ादी हित हमने अगणित अविराम महा बलिदान किये,
जलियाँवाला कांड सहा, औ' ममता के बंधन छोड़ दिये,
चुप कि कराह न उठने दी थी पीड़ा के सारे घाव सिये,
विपदाओं के बादल हँस-हँस हमने अपने ही शीश लिये,
पर, यह भारत माता तो आज अभागिन,
नाची है रणचण्डी आ क्रूर पिशाचिन !

सन उन्नीस-सौ-बयालीस उठाया जनता ने आन्दोलन,
'भारत छोड़ो' के नारे पर फाँसी झूले आ मुक्त-तरुण,
पशुबल की गोली से हिल काँप उठा था यह सम्पूर्ण गगन,
हम मतवाले थे आज़ादी के अविचल निर्भय सैनिक बन ;
जब जूझे दुश्मन से, हम मरते गिन-गिन !
विधवा होती जाती थीं, हाय सुहागिन !

जन-जन निर्भय हो अत्याचारी अंग्रेज़ों से जूझा था,
बच्चों, माता, पत्नी और पिता का डर न कहीं सूझा था,
वापस भग आने के कायरपन को न किसी से पूछा था,
इनने अपने बीहड़तम पथ को न किसी से झुक बूझा था,
निकली थीं बनकर अबलाएँ अभिशापिन,
कूदीं रण-ज्वाला में बनकर उन्मादिन !

'लीगी' वाले भारत को अगणित काफ़िर 'नीरो' सिद्ध हुए ;
जिनके 'क़ौमी' प्रचार से एके के सब पथ अवरुद्ध हुए,
अतएव प्रगतिशील प्रखर जनबल दुर्दम संस्कृत क्रुद्ध हुए ;
अच्छे और बुरे के फिर ऐसे विनष्टकारी युद्ध हुए
हावी होकर आया कटु य' कसाईपन
मज़हब का नंगा नाच हुआ खन-खन-खन !

निर्दयी बनी दीवानी, भोली जनता औ' गुमराह बनी,
आपस में काट रहे आज गले भूमि रक्त से हाय सनी,
ललकार उठा तब सरहद्दी सूबे में पठानसिंह 'गनी',
हर जन-तन्त्र बसाने वाले की छाती फूली और तनी,
गांधी, खान, जवाहर रोकेंगे क्रन्दन,
आराजकता का हो जग से आज मरण !

दिन दूर न होगा जब नक्शे से खुद पाकिस्तान हटेगा,
ऊँचे-ऊँचे भवन गिरेंगे शोषण, पूँजीवाद मिटेगा,
शक्तिमना अविजित उन्नत मेरा यह हिन्दुस्तान बनेगा,
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सबका है यह देश, जगेगा,

गले मिलेंगे भेद भूल कर ये जन-जन
खिल जाएगा रे सूखा उजड़ा उपवन !

फिर हम देंगे जग को अपनी नूतन संस्कृति का ज्योति दान,
सत्य, अहिंसा, औ' चर्खे का गाएंगे हम उन्मुक्त गान,
फैलेगी सारे लोकों में भारत की सुन्दर श्रेष्ठ शान,
उठो-उठो अब ओ मेरे बन्दी चिन्तित देश अमर महान !
अखंड, संयुक्त बनो ! मुक्त करो जीवन !
जर्जरता मिट जाये, आये नव-यौवन !
1947

(18) विवशता में

विवशता की
असह उन मूक घड़ियों में
गगन को चीरती आएँ
तुम्हारे प्यार की किरणें !
कि फिर
युग-युग पिपासित होंठ पर जग के
बहें मधु स्नेह के झरने !
मनुजता के पतन-निर्मित
अँधेरे के समय-पट पर,
गगन को चीरती आएँ
तुम्हारे प्यार की किरणें !

बहा ले जा घृणा के तृण,
अरी झेलम, अरी गंगा !
क्षितिज से उठ रहीं लपटें,
महा बर्बर विनाशी आपसी दंगा,
लुटेरा है खड़ा नंगा !

कि काले मेघ आओ तुम
कि काले मेघ छाओ तुम,

बरस लो आज झर-झर-झर,
कड़क कर आततायी के
हृदय में आज भर दो डर,
गिरा करका,
ढहा दो सब अशिव के गढ़ !
अरे ओ, त्राण के दुर्दम चरण !
उठ-चढ़
फिसलनी इन बड़ी ऊँची दिवारों पर,

समूची शक्ति के बल पर,
कि तेरे दृढ़ प्रहारों से
लगे ढहने,
सभी दीवार ये गिरने !
गगन को चीरती आएँ तभी
निर्देश पथ को दूर से
करती हुई किरणें !
तभी बाहें उठें तेरी
सभी पीड़ित उरों की गोद में भरने !

सदियाँ बीत जाएंगी,
कि नदियाँ सूख जाएंगी,
धरा यह डूब जाएगी,
नयी धरती उभर कर शीघ्र आएगी,
मगर विश्वास है इतना
विरासत में मिलेगी यह
तुम्हारी भूमि की संस्कृति,
इसे केवल न जानो इति।
उठो ऐसा न हो मानव
भविष्यत् थूक दे तुम पर,
बनो मत मूक,
पशुता के चरण पर
नत नहीं हो शीश !

यह आशीष
दोनों ने दिया है
शाप ने, वर ने।
गगन को चीरती आएँ
तुम्हारे प्यार की किरणें !
1948

(19) युद्ध-क्षेत्र पर

खंडहर हैं, खंडहर हैं, खंडहर !
शिलाएँ टूटतीं भू पर !

भयंकर ध्वंस निर्मम,
धूम्र-तम है,
अग्नि की भीषण शिखाएँ लाल
इधर-उधर !
कि कर्ण परदा फाड़ता है स्वर !

मिटाता साथ में सब
खेत, गृह, अट्टालिकाएँ, जीर्ण कुटियाँ,
क्रूरता, विस्फोट,
बॉम्ब को पटक,
झपट लटक उतर पेराशूट से
ले शीघ्र निर्मम
नाश के कटु यंत्र,
ये सब भूत से बन
मानवों के पूत,
ख़ाकी वर्दियों में रौंदते हैं
वक्ष दुनिया का।
आँसू रक्त की है धार !
सारा लाल है संसार !
चारों ओर धुआँ-धार !
1943

(20) देशी रजवाड़े

प्रतिगामी, जनता के दुश्मन
जो जन-बल के सदा विरोधी,
जिनने जनता के शव पर चढ़
किया अभी तक चौपट शासन !

जन घोर उपेक्षा, लगा दिया
यहाँ ज़मीदारों का जमघट
अंग्रेज़ों को शीश झुकाया
औ' भारत का अपमान किया !

राजा और नवाब विलासी
महलों में सुख के भर साधन,
फ़ौज़ पुलिस के गुर्गों से जो
लगवाते जन-जन को फाँसी !

खुद निश्चिन्त हमेशा रहते
उठता रहता है कहीं धुआँ,
जलते गाँव, उजड़ जाते जन
अकाल, बीमारी को सहते !

करते रहते जो मनमानी,
अपने औ' पुरखों के फोटो
औ' स्टेच्यू पथ में लगवाते
पर, न लगी है झाँसी की रानी !

एक नवाब बनाता मसज़िद
आर्य-समाज न बनने देगा,
धर्मों की संकीर्णता बढ़ी,
छीने हैं हक़, यह कैसी ज़िद !

यह भारत जब आज़ाद हुआ
तब इनने भी यह ही चाहा;
हम आज़ाद बनें, पर न पता
अंग्रेज़ मरा, बरबाद हुआ !

पनपा इनकी सीमा में बढ़
हिन्दू, मुस्लिम, हरिजन में घुस
जाँति-पाँति का भेद भाव रे
ये प्रतिक्रियावादी दृढ़ गढ़ !

ये हिजड़े कायर लड़ न सके !
जब अंग्रेज़ी राज बना था,
मुट्ठी भर 'गोरे' बढ़ते थे,
ये कर न सके कुछ, सिर्फ़ झुके !

चलती आयी अब तक सत्ता
संगीनों के, गोलों के बल,
अब न टिकेगा ताज कहीं भी
जाग उठा हर पत्ता-पत्ता !

'शेरे कश्मीर' बना हर जन
ट्रावनकोर, हैदराबाद कि
भोपाल व कश्मीर शत्रु हैं
अतएव करो जन-आन्दोलन !

फिर भारत में जनतंत्र जगे !
जनता का राज बने ऐसा,
हिल न सके जब आये झंझा,
ये ताज पटक कर शीघ्र भगें !
1947

(21) मलान सावधान

मिटी नहीं अभी
मनुष्य की पशुत्व-वृत्ति,
ले रहा अशान्त श्वास
जंगली हृदय मलान
रंग-भेद के बुझे हुए चिराग़ पर !
गये नहीं अभी
समाज से विचार
रक्त-पान के
अपार लूट के, खसोट के,
'सुवर्ण' की विनष्ट शान के
मनुष्य के मनुष्य पर प्रहार मौत के !

असभ्य दासता प्रथा बनी रहे,
'सुवर्ण' चाह
आज भी बना रही सवेग योजना,
गले पुकार कर रहे
अशक्त सृष्टि-स्वप्न घोषणा दहाड़ !
ले विनाश शस्त्र-बल शरण,
सहस्र राक्षसी चरण
विषाक्त साथ में घृणा पवन,

अनीति ढोल
बन्द कर श्रवण
प्रमादवश
बजा रहा, बजा रहा !
गुलाम विश्व के
मिटे हुए असार चिन्ह
फिर बना रहा !
ज़मीन पर न, आसमान में
क़िले बड़े-बड़े असीम

कर रहा सृजन !
उबल रहा मलान का
प्रखर सुधार श्वेत-रक्त,
गॉड का महान भक्त,
गौर-वर्ण-जाति का नवीन दूत

यह ग़लत कि वह मनुष्य बीच भूत !

अजेय शक्ति उठ रही,
नवीन ज़िन्दगी मचल रही,
विनाश का धुआँ
बिखर-बिखर अनन्त में समा रहा,
विरोध-मेघ व्योम घेर कर लहर रहे,
मनुष्यता उतर रही,
नये समाज का विधान हो रहा !
बड़ा कठिन लकीर पीटना
वही - पुराण जाति-भेद, रंग-भेद की !
मलान सावधान !
1948

(22) अफ़सोस है!

अफ़सोस है, अफ़सोस है !

उजड़ा हुआ संसार है,
रोदन यहाँ हर द्वार है,
बिगड़ा हुआ, पीड़ित, दुखी, मिटता हुआ समुदाय है !
अफ़सोस है, अफ़सोस है !

भीषण क्षुधा की ज्वाल है,
सूखी जगत की डाल है,
अम्बर-अवनि में गूँजता बस एक ही स्वर, 'हाय है' !
अफ़सोस है, अफ़सोस है !

नीरस मनुज का गान है,
झूठा लिए अभिमान है
गतिहीन जीवन है जटिल, असहाय है, निरुपाय है !
अफ़सोस है, अफ़सोस है !

1947

(23) विरोधी शक्तियाँ

घेर रहा है जग को प्रतिपल, उठता जड़ता का काला तम,
बढ़ता जाता है जीवन में, अतिशय क्रन्दन, अतिशय विभ्रम,
छाते जाते अविरल नभ में, काले, भयग्रस्त, अमा-से घन,
मति खो, अनियन्त्रित आज बना निष्प्राणित, अपमानित जीवन !

रोक रहा है कौन उठा कर, आज भुजा से जन का इंजन !
गति प्रेरक पहियों में, अवनति-हित कौन रहा है भर उलझन ?
बर्फ़ीली आँधी में जीवित मानव धधका सेंक रहा है
कौन दिवाकर-दीपित मुख पर, परदा, ढकने, फेंक रहा है ?

किन पापों की रात क्षितिज से, पथभ्रष्टा बन उतर रही है,
डायन-सी प्रतिमा लेकर, नव युग की झोली कतर रही है,
कौन विरोधी-धारा, फैली बस्ती पर आ दौड़ रही है,
कौन विरोधी धारा, नूतन, दीवारों को तोड़ रही है ?

किसने इस क्षण आभा को कर म्लान, अँधेरे से मन जोड़ा,
अक्षय संचय जिससे रह-रह कर होता जाता है थोड़ा !
जूझो युग के सजग पथिक तुम थक जाने का अवसर न अरे,
रे नाविक ! विधि सोचो ऐसी, जिससे युग-नौका आज तरे !

1947

(24) मिल-मज़दूर

लम्बी-लम्बी
चौड़ी-चौड़ी
हलकी नीली

कुछ मटमैली
गड्ढ़ों वाली
टूटी-टूटी
डम्बर की सड़कें
रोज़ सबेरे तड़के
मीलों के उन
मज़दूरों से
ख़ूब खचाखच
भर जाती हैं !

अगणित नारी,
बालक, नर
रोटी लेकर
हँस-हँस कर
जल्दी-जल्दी
सिर्फ़ मशीनों की
धुनबुन में
बढ़ते जाते हैं
रोज़ क़तारों में !

उस काले-काले
इंजन-सा ही
जिनका जीवन
धड़-धड़ करता
दौड़ रहा है !
किस्मत अपनी
फोड़ रहा है !

मैले-मैले
कपड़े पहने,
वे क्या जानें
कैसे गहने ?

कपड़ों के निर्माता
वैभव के निर्माता
पर अध-नंगे
और अचानक
एक दिवस फिर
आहें भर कर
होकर जर्जर
भूखे नंगे
चल देते हैं

स्वर्ग-पुरी को !
बेहद महँगा
जिनका बनता
मरघट का क्रम !

ऐसे मानव
बालों में भर
कानों में भर
रूई के कण,
आँखें मलकर
डगमग करते
बढ़ते जाते,
जीवन से डट
लड़ते जाते,
पर्वत छाती
चढ़ते जाते,
टीले ऊँचे
खंदक नीचे
चलते जाते,
गरमी सरदी
वर्षा ओले
तन को खोले

औ' बिन बोले
जीवन भर औ'
हँस-हँस कर
आघात निरंतर
भीषण तर
सहते जाते !

आबाद रहे
यह धरती भी
हर रोज़ भरें
ये राहें सब,
हर रोज़ छुए
यह धूल चरण
इन मानव की
इस महिमा पर !
1946

(25) शराबी[1]

हमेशा देखकर जिसको किया करते मनुज नफ़रत
कि दुनिया में नहीं मिलती कभी जिसको ज़रा इज़्ज़त,
पड़ा मिलता कभी मैली-कुचैली नालियों के पास
कि जिसका ज़िन्दगी का, ठोकरें खाता रहा इतिहास,
ऐसा आदमी केवल
शराबी है, शराबी है !

नहीं रहती जिसे कुछ याद दुनिया की, लँगोटी की,
कि भर दुर्गन्ध जीवन की, सदा हँसता हँसी फीकी,
हमेशा चाटते रहते सड़क पर मुख अनेकों श्वान,
हज़ारों गालियाँ देते, हज़ारों लोग पागल जान
ऐसा आदमी केवल
शराबी है, शराबी है !

शराबी को हमेशा काल पहले मौत आती है,
कि पहले फूल-सी कोमल जवानी बीत जाती है,
हज़ारों व्यक्तियों में एक पैसे का बना मुहताज,
कि जिसकी भूल कर कोई कभी सुनता नहीं आवाज़
ऐसा आदमी केवल
शराबी है, शराबी है !
(1 पंजाब सरकार के अनुरोध पर लिखित।)
1949

(26) शराबी से[1]

मनुष्य हो अगर तो फिर शराब मत पिया करो !

तुम्हारे हाथ में भरा हुआ गिलास जो,
उसे समझ ज़हर तुरन्त आज फोड़ दो,
बुझा सके कभी न दिल की हाय! प्यास जो
उसे गलीज़ व्यर्थ जान जल्द छोड़ दो,
मनुष्य हो अगर तो फिर नशा नहीं किया करो !

स्वतंत्र - जो बिना सुरा के शान से जिए,
शराब है बुरी सदा अमीर के लिए,
शराब है बुरी छुरी सदा ग़रीब के लिए,
शराब है सदा बुरी शरीर के लिए !
मनुष्य हो अगर तो सभ्यता के सामने डरो !
(1 पंजाब सरकार के अनुरोध पर लिखित।)
1949

(27) सोओ नहीं

सोओ नहीं, सोओ नहीं !

यह रात है दुख से भरी,
इस रात डूबेगी तरी,

तुम बाहुओं में शक्ति भर
कर जागते निशि भर रहो !
इंसान हो तो भीत जीवन में कभी
होओ नहीं, होओ नहीं !

यह रात काली है बड़ी,
पथ पर भयानकता जड़ी
तुम ज्वाल हाथों में लिए
आवाज़ यह करते रहो
अवसर प्रलय संगर प्रबल तुम भूलकर
खोओ नहीं, खोओ नहीं !
1947

(28) स्थितियाँ और द्वन्द्व

निश्चिंत भी, भयभीत भी !

यह ज़िन्दगी जब दाँव पर,
संघर्ष है प्रति पाँव पर,
नव भैरवी भी बज रही,
रुकना न सम्भव है कहीं
है हार भी औ' जीत भी !
निश्चिन्त भी, भयभीत भी !

हम सुन रहे हैं राग सब
अनुराग और विराग सब
कोई बुलातालौट आ,
कोई सजाता कह, 'विदा !'
रोदन करुण भी, गीत भी !
निश्चिन्त भी, भयभीत भी !

शिव में अशिव आभास भी,
छलना जहाँविश्वास भी,

अभिशाप भी वरदान है,
मिट्टी निरीह महान है !
अपवित्र और पुनीत भी !
निश्चिन्त भी, भयभीत भी !

ललकारता है कौन यह ?
पुचकारता है कौन यह ?
मानव विरोधी द्वन्द्व में,
मानव सदा आनन्द में !
यह शत्रु भी है मीत भी !
निश्चिन्त भी, भयभीत भी !
1952

(29) जनवाणी

जो जन-जन के भावों और विचारों को वहन करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !

तम का छाया-नर्तन
आतंक भरा शासन
जन-जागृति ज्योति-किरण
करती है निर्वासन,

जो हर अवरोधी सामाजिक ताक़त का दमन करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !

शोषक-वर्ग भुजाएँ
नाशक तेज हवाएँ
मेघों-अस्त्रों से कर
नव-शक्ति प्रहार प्रखर,

जो जन-बल के सम्मुख श्रद्धा आदर से नमन करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !

उठते गिरते हरदम
नंगों भूखों का श्रम,
क्षण भर होकर आहत
पर, पा लेता क़ीमत,

जो सामूहिक पीड़ा, आँसू, क्रन्दन को सहन करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !

सुनकर उठते विप्लव,
बिछ जाते भू पर शव,
उठता ज्वाला भैरव,
गुञ्जित कर क्रन्दन-रव,

जो गिरती दीवारों पर नूतन जग का सृजन करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !

वेग रुके जन बल का,
स्वर बनकर हलचल का
छा जाता अम्बर में
धरती पर घर-घर में,

जो दुनिया की शोषित जनता का एकीकरण करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !
1947

(30) बदलता युग

लो बदलता है ज़माना !

ज्वाल जग में लग गयी है,
आग जीवन की नयी है
जल रहा है जीर्ण जर्जर टूट मिटता सब पुराना !

ध्वंस की लपटें भयंकर
छा रहीं सारे गगन पर
वेग अन्धाधुन्ध है जिसका असम्भव है दबाना !

बढ़ रहा प्रत्येक जन-जन,
रोशनी में मुक्त कन-कन,
वास्तविकता सामने आयी, न अब कोई बहाना !

रोष इससे तुम करो ना,
द्रोह साँसें भी भरो ना,
यह सतत बढ़ता रहेगा, व्यर्थ काँटों को बिछाना !

1949

(31) नया प्रकाश

नया प्रकाश है
नया प्रकाश !
दीप्यमान ओर-छोर
अंधकार मिट रहा अछोर घोर !

वास्तविक स्वरूप नग्न सामने -
असंख्य क्षीण-दीन,
जीर्ण-शीर्ण
भग्न

सामने खड़े हुए
क़तार में मनुज !
धुआँ-धुआँ
घिरा !

कि आसमान में
घुमड़ रहे
डरावने विशाल मेघ !
चीरता हुआ गगन
नवीन विश्व का
नवीन शिशु निकल
समाज के प्रवीण रंगमंच को
निहार बढ़ रहा।

प्रकाश देख काँपती
परम्परा,
प्रकाश देख डगमगा रहीं

कल पुराण रूढ़ियाँ !
नवीन चेतना,
नवीन भावना,
विचार नव्य-भव्य औ'
नवीन आश है !
नवीन आश है !
नया प्रकाश है,
नया प्रकाश है !

1947

(32) आज तो

आज तो चली अजब हवा
दब गया दमन का दबदबा,
भय विहीन,

है ज़मीन !
मात चाँद की अरे कला ;
शक्ति गीत गा रहा गला,
हर मलीन
है नवीन !

रूप है समाज का अजब,
हर मनुष्य है स्वतंत्र अब,
ना अधीन
है न दीन !
1950

(33) बदल रही है

बदल रही है आज हमारी
पहली नक़ली तसवीर,
(खाओ भूखो ! हलवा पूरी
और गरम मीठी खीर !)

बदल रही है आज हमारी
फटी पुरानी पोशाक,
(अब न कटाना जग के सम्मुख
अपनी यह ऊँची नाक !)

बदल रही है आज हमारी
डर की हलकी आवाज़,
(दूर बहुत ही दूर भगी है
अब तन की मन की लाज !)

बदल रही है आज हमारी
यह जाड़ों मारी शॉल,
(आज बना लो भैया अपनी
मोटी नव-चादर लाल !)

1950

(34) मुसकान के रंग

दुनिया के जिगर से
जो उट्ठा था धुआँ
अब दहकते हुए शोलों में
बदल गया !

आयी थी जो आवाज़ कि पहले
अब उसका हर उतार-चढ़ाव
सब साज़ नया !

दिखता था
समुन्दर की जो छाती पर !
'भाटे' का उतरता हुआ जल,
अब तेज़ बड़ी लहरों में
पलट गया
बीत चुका
गुज़रा हुआ कल !

चेहरे पर थी जो
मूक मुसीबत की शिक़न
लाखों अपमानों की जलन,

अब मुसकान के रंगों की चमक
रोशन जिससे उन्मुक्त-गगन !
1947

(35) मेरे देश में

आज
मेरे देश के आकाश पर
काली घटाएँ वेदना की

घिर रही हैं !
कड़कड़ा कर गाज
टूटे,
फूस-मिट्टी के हज़ारों छप्परों पर
गिर रही है !
और गहरा हो रहा है
ज़िन्दगी की शाम का
फैला अँधेरा,
पड़ रहा
चमगादड़ों का, उल्लुओं का,
मौत के सौदागरों का,
ख़ून के प्यासे हज़ारों दानवों का,
ज़िन्दगी के दुश्मनों का
भूत की छाया सरीखा
आज डेरा।

कर दिये वीरान
कितने लहलहाते खेत
जीवन के,
सुनायी दे रहे स्वर
दुख, अभावों और क्रन्दन के !

करोड़ों मूक जनता
आज भूखी है,
विवशता के धुएँ में

मुश्किलों से साँस लेती है !
किसी के द्वार पर
दम तोड़ देती है !
कि निर्बल हड्डियों का
क्षीण पंजर छोड़ देती है !
1947

(36) रक्षा

डूबे गाँव,
बढ़ी है बाढ़ !
नदी के कूल गये पथ भूल,
कि चारों ओर
मचा है शोर !
सेठों के रक्षक-दल भागे
आगे-आगे,
बिड़ला-डालमिया ने
धोती-कम्बल बाँटे,

बनकर दान-दया के वीर !
चलाकर मीठे रस के तीर !
दिये हैं अपने घर के चीर !
कल जब बाढ़ बढ़ेगी और,
भगे-उखड़ों की नहीं मिलेगी ठौर,
तब ये बाहर आधे नंगे रहकर
अपनी बैठक दे देंगे सत्त्वर,
और स्वयं सो जाएंगे यों ही
खोल 'कला सज्जित-कक्ष' गरम !

जल से भीग गये हैं खूब,
तभी तो काँप रही है देह,
नहीं उठते हैं आज क़दम
लख कर पीड़ा गये सहम !
मज़लूमों की रक्षा हित
सेवा करने निकले,
बेदाग़ पहन कर कपड़े !
देने आश्वासन
न डरो,

हम कर देंगे सभी व्यवस्था
विधवा-आश्रम खुलवा देंगे,
धीरे-धीरे
सब का ब्याह करा देंगे !
मरे हुओं को गंगा-यमुना में
या लकड़ी-इंधन देकर
पार लगा देंगे।
सच मानों,
बेहद चिन्तित हैं प्राण,
हमारे कहते हैं अख़बार
'अर्जुन, नवभारत, विश्वमित्र, हिन्दुस्थान' !
1950

(37) धरती की पुकार

उट्ठो युवको !
धरती तुम से जीवन माँग रही है !
जीवन तुमको देना होगा,
फिर चाहे
मोटी-मोटी हरियाली की लोई में
मुँह ढक कर सो जाना,
खेतों-खलिहानों के
अथवा
गेहूँ-चावल के
सपनों में खो जाना !

पर, आज अभी तो
जगना होगा,
पीली-पीली लपटों में
तपना होगा,
आगे-आगे
लम्बे-लम्बे क़दमों को
रखना होगा,

पथ के काँटों की नोकों को
फ़ौलादी पैरों की रेती से
घिसना होगा !

आओ युवको !
धरती तुमसे धड़कन माँग रही है !
बदले में जितनी चाहो तुम
उसकी ज्वाला ले सकते हो,
पर, अपने प्राणों की धड़कन
उसमें भरनी होगी !
यदि मृत्युंजय बनकर रहना है,
यदि निर्भय
अन्तर की बातें कहना है,
तो इस क्षण
अपने से ऊपर उठना होगा
फिर चाहे
हँसती दुनिया की तसवीर
बनाने में जुट जाना,
भूखों-नंगों को
अपनी बाहों में भर लाना !
1950

(38) मालवा में अकाल

अकाल-ग्रस्त मालवा !
हताश जन,
निराश जन
भूख, भूख, भूख !
नष्ट हो गयी फ़सल,
दर असल ?

दूर-दूर से,

उदास
छोड़ गाँव आ रहे
कुटुम्ब-के-कुटुम्ब,
और यह अवन्तिका नगर
कि कालिदास की प्रसिद्ध
कर्म-भूमि
घिर गयी अकाल से !

दैत्य भूख का खड़ा हुआ अकड़,
खोल सर्व-भक्ष्य-मुख !

पर,
अकाल है ग़रीब के लिए,
दर्द, भूख, त्रास, दुःख हैं
ग़रीब के लिए !
मिट रहा अशक्त सिर्फ़ वर्ग यह !

सेठ के मकान में भरा अनाज है,
ज़मीनदार के मकान में भरा अनाज है,
कौन जीव एक जो उदास ?
घूमते अबंध मूर्ख से कठोर,
लाल-लाल दाँत
पान से रँगे बता रहे
समूह-के-समूह का
निकाल रक्त पी चुके !
सफ़ेद वस्त्र
सूक्ष्म तार-तार से बना पहन
एक क्या अनेक कह रहे
'कि मिल रहा न ज्वार-बाजरा।'
गेहुँ से भरी हुई
अजीब तोंद ले !

(विषम प्रयास स्वाभिमान का)
उठो किसान औ' मजूर
एकता तुम्हें बुला रही,
अकाल ग्रस्त-त्रस्त
जब समस्त मालवा !
1947

(39) अमन की रोशनी

युद्ध-अन्धकार-वक्ष फाड़
जगमगा रही
नवीन शांति की किरण !
जंगखोर-शक्ति के
तमाम व्यूह तोड़
बढ़ रहे
सशक्त विश्व के चरण !
आसमान में असंख्य हाथ
उठ रहे

कि हम बिना
समस्त
युद्ध-सर्प-दंश काटकर,
व बर्बरों के हाथ से
सरल-सुशील सभ्यता-वधू
निकालकर
न चैन से कभी भी
बैठ पाएंगे !
असंख्य दृष्टियाँ लगी हुईं
नवीन राह पर,
कि हम
बिना प्रभात के हुए
व तामसी निशा
विनाश के हुए

(नहीं-नहीं !)
अपार नींद के समुद्र में
कभी न डूब पाएंगे !
क्योंकि बद्ध-द्वार
युद्ध-दुर्ग के खुले,
व शक्ति के प्रहार से
तमाम अस्त्र-शस्त्र
ध्वस्त हो रहे !
जंगबाज़
(जो कि विश्व का उलूक-वर्ग है)
अमन की रोशनी से
त्रस्त हो रहे !
1952

(40) जंगबाज़

लड़खड़ा रहे तमाम जंगबाज़,
टूटकर बिखर गया
कुचाल-साज़ !

जागरूक विश्व ने दिया रहस्य खोल,
असलियत बता रहा मनुष्य
पीट ढोल !

चोर और मुफ़्तख़ोर बौखला रहे,
सत्य और नेकनीयती बता रहे
कि ख़ून हम बहा रहे
किसी न स्वार्थ-सिद्धि के लिए,
वरन्
स्वतंत्रता, विकास, लोकतंत्र के लिए !

पर, प्रकट हुए वहीं
अभाव रोग कोढ़

मौत-ग्रस्त भुखमरी,
अनेक आफ़तें बुरी-बुरी
सदैव ही रही घिरीं !

समझ गया हरेक व्यक्ति आज
ये तभी
तमाम लड़खड़ा रहे हैं जंगबाज़ !
1952

(41) ज़िन्दगी कैसे बदलती है !

यह झोपड़ी है फूस की,
जिसकी पुरानी भग्न दीवारें,
व आधी छत खुली!

इस रात में
जो है बड़ी ठंडी,
खड़ी है मौन, तम से ग्रस्त !

उसमें ले रहे हैं साँस
कोई तीन प्राणी,
हार जिनने
आज तक किंचित न मानी !

भूमि पर लेटे हुए,
गुदड़ी समेटे और गट्ठर से बने
निज ज्वाल-जीवन से हरारत पा
कुहर के बादलों में
गर्म साँसें खींचते हैं !
और उसका शक्तिशाली उर
दबाकर भेदते हैं !

भग्न यदि दीवार है

पर, भग्न आशा है नहीं !
विश्वास धूमिल
और दृढ़ आवाज़ बंदी है नहीं !
कल देख लेना
ज़िन्दगी कैसे बदलती है !
1952

(42) नयी नारी

तुम नहीं कोई
पुरुष की ज़र-ख़रीदी चीज़ हो,
तुम नहीं
आत्मा-विहीना सेविका
मस्तिष्क हीना-सेविका,
गुड़िया हृदयहीना !

नहीं हो तुम
वहीं युग-युग पुरानी
पैर की जूती किसी की,
आदमी के
कुछ मनोरंजन-समय की
वस्तु केवल !

तुम नहीं कमज़ोर,
तुमको चाहिए ना
सेज फूलों की !
नहीं मझधार में तुम
अब खड़ी शोभा बढ़ातीं
दूर कूलों की !

अब दबोगी तुम नहीं
अन्याय की सम्मुख,
नयी ताक़त, बड़ा साहस

ज़माने का तुम्हारे साथ है !
अब मुक्त कड़ियों से
तुम्हारे हाथ हैं !
तुम हो
न सामाजिक न वैयक्तिक
किसी भी क़ैदखाने में विवश,
अब रह न पाएगा
तुम्हारे देह-मन पर
आदमी का वश

कि जैसे वह तुम्हें रक्खे
रहो,
मुख से न अपने
भूल कर भी
कुछ कहो !
जग के
करोड़ों आज युवकों की तरफ़ से
कह रहा हूँ मैं -
'तुम्हारा 'प्रभु' नहीं हूँ,
हाँ, सखा हूँ !
और तुमको
सिर्फ़ अपने
प्यार के सुकुमार-बंधन में
हमेशा
बाँध रखना चाहता हूँ !
1952

(43) मुक्ति-पर्व

यह वह दिवस है
कि जिस दिन हमारे चरण से
बँधी शृंखला दासता की
तड़क कर अवनि पर गिरी थी,

व सारे जगत ने
बड़ी तेज़ आवाज़ जिसकी सुनी थी,
कि जिससे
सभी भग्न सोये हुओं की
थकी बंद आँखें खुली थीं,
व हर आततायी के
पैरों की धरती हिली थी !

बुभुक्षित व शोषित युगों ने
नवल आश-करवट बदलकर
बड़ी साँस लम्बी भरी जो
कि भय से उसी क्षण
सुदृढ़ देश साम्राज्यवादी
सहम कर
मरण के क़दम पर गिरे,
और खोये
समय की सबल धार में !

क्योंकि निश्चय
किसी पर किसी भी तरह

आज छाना कठिन है !
किसी को किसी भी तरह
अब दबाना कठिन है !

नयी आग लेकर यह जागा तरुण है !
विरोधी ज़माने से लड़ना ही
जिसकी लगन है !

यह वह दिवस है
कि जिस दिन हटा आवरण सब
हमारे गगन पर

नयी रोशनी ले
नया चाँद आया,
अँधेरी दिशा चीर कर
जगमगाया ;
बड़ा आत्म-विश्वास लाया
नहीं यह तिमिर अब घिरेगा,
न आँखों पर परदा
प्रलय का गिरेगा,
न उर-वेदना
रात-भर नृत्य करती रहेगी,
नहीं दुःख की और नदियाँ बहेंगी !

उभरती जवानी नयी है !
वतन की कहानी नयी है !
रुकावट सहायक बनी है,
प्रखर युग रवानी यही है !
विजय की निशानी यही है !

यह वह दिवस है
कि जिस दिन नयी ज़िन्दगी ने
सहज मुसकरा मुग्ध
चूमे हमारे अधर थे !
खुले कोटि
अभिनव प्रबल मुक्त स्वर थे !

मनायी थीं हमने
विभा-ज्ञान-त्योहार खुशियाँ,
स्वयं आन तक़दीर नाची,
व हम गा रहे थे !
कि दुनिया के सम्मुख
बड़ी तेज़ रफ़्तार से बढ़
भगे जा रहे थे !

शिराओं में लहरें
नये ख़ून की भर !
निडर बन
सहारे बिना
और देशों को लड़ने की ताक़त
दिये जा रहे थे !
पुराने सभी घाव घातक
सिये जा रहे थे !
नयी भूमि पर
एक नव शांत बस्ती
बसाये चले जा रहे थे !

करोड़ों
सजग औरतों के नयन थे,
करोड़ों
सबल व्यक्तियों के चरण थे,
कि जो देश का चेहरा सब
बदलने खड़े थे !
बुरी रीतियों से
कड़ी आफ़तों से लड़े थे !

यह वह दिवस है
कि जिस दिन
हमारी हरी भूमि पर
फूल नूतन खिले थे !
व बरसों के बिछुड़े हुये
फिर मिले थे !
युगोंबद्ध
सब जेलख़ाने खुले थे !
कि हँसते हुए
विश्व-स्वाधीनता के सिपाही
विजय गान गाते

सुखद साँस भर
आज बाहर हुए थे !
अनेकों सुहागिन ने
जिस दिन को लाने
स्वयं माँग सिन्दूर पोंछा
वही यह दिवस है !
वही यह दिवस है !
सफल आक्रमण का
अथक त्याग, बलिदान, आन्दोलनों का,
जगत जागरण का,
क्षुधित नग्न पीड़ित जनों का,
दबी धड़कनों का !
1950

●

6

टूटती शृंखलाएँ

रचना-काल सन् 1944/47-48
प्रकाशन सन् 1949

कविताएँ

1 सदियों बाद
2 स्वातंत्र्य-झंझावात
3 ध्वस्त करो
4 नयी दुनिया
5 संग्राम
6 पीयूषधारा
7 युग-विहग
8 जन-समुन्दर
9 मुक्ति की पुकार
10 अजेय
11 ढहता महल
12 संक्रांति-काल
13 पाषाण-उर
14 मानवी-व्यापार
15 इतिहास
16 झंझा में दीप
17 होली जला दो
18 अभियान के बाद
19 प्रलय
20 इन्क़लाब
21 जागरण
22 परिवर्तन
23 उद्‌बोधन
24 संबल
25 नया द्रश्य
26 नयी रचना
27 हुंकार
28 नयी निशानी
29 युग-निर्माता
30 धधकती आग
31 गाड़ता हुआ
32 शहीदों का गीत
33 मुझे है याद
34 कला
35 युग कवि से
36 मंज़िल कहाँ
37 पिछड़े हुए राष्ट्र से

38 ज़िन्दगी की शाम
39 जब-जब
40 विश्वास है -
41 बहुत हुआ बस रहने दो
42 मन
43 कौन से सपने
44 निशा का युग
45 जीवन-दीप
46 रात का आलम
47 सुनहरी आभा
48 प्रभात
49 ज्वार भर आया
50 ज़िन्दगी
51 शिशिर-प्रभंजन
52 नया विश्वास
53 चाह
54 धूल-श्री
55 ध्वंस और सृष्टि
56 मेरे हिन्द की संतान
57 स्नेह की वर्षा
58 बदलो
59 जन-रव
60 पहली बार

(1) सदियों बाद

सदियों बाद हिले हैं थर-थर
सामंती-युग के लौह-महल,
जनबल का उगता बीज नवल;
धक्के भूकम्पी क्रुद्ध सबल !

सदियों बाद मिटा तम का नभ,
चमका नव संसृति में प्रभात,
बीती युग-युग की मृत्यु रात,
डोला मधु-पूरित मलय वात !

सदियों बाद उठी है आँधी
कर आज दिशाएँ मटमैली,
धूल क्षितिज पर अहरह फैली;
शक्ति-विरोधी पंगु अकेली !

सदियों बाद हँसी है जनता
करने नवयुग की अगवानी;
जीवन की अभिरुचि पहचानी,
दफ़नाने को अश्रु-कहानी !

सदियों बाद जगा है मानव
अधिकारों की आवाज़ लगी,
सुन जग की जनता आज जगी
दुख, दैन्य, निराशा भगी-भगी !
1947

(2) स्वातंत्र्य-झंझावात

चल रहा है वेग से स्वातंत्र्य-झंझावात,
आज जन-जन की पुकारेंअग्नि की बरसात,
आज जनबल की दहाड़ेंमृत्यु का आघात !

दासता की शृंखलाएँ तोड़ देंगे आज,
घोर प्रतिद्वन्द्वी हवाएँ मोड़ देंगे आज,
निज निराशा, फूट, जड़ता छोड़ देंगे आज !

रक्त-रंजित लाल आँखें माँगतीं प्रतिशोध,
ख़ून का बदला मनुज-बल चाहता भर क्रोध,
चाहता जब नाश, कैसा आज लघु-अवरोध ?

चीरती गिरि से चली है तीर-सी जो धार;
म्यान से बाहर निकल ज्यों विकल हो तलवार,
देख जिसको भीत शोषक-वर्ग अत्याचार !

झुक नहीं सकते हजारों व्यक्तियों के शीश,
झुक नहीं सकते हज़ारों नारियों के शीश,
झुक नहीं सकते हज़ारों बालकों के शीश !

रुक नहीं सकते चरण दृढ़ द्रोहियों के आज,
मिट नहीं सकते दमन की आँधियों से आज,
इन्क़लाबी स्वर दबे कब साथियों के आज ?
1947

(3) ध्वस्त करो

सब जर्जर-जर्जर ध्वस्त करो !
चिर जीर्ण पुरातन ध्वस्त करो !

कण-कण निर्बल क्षीण असुन्दर,
घुन-ग्रस्त, फटा, मैला, झुक कर,
मिटती संसृति में नूतन बल
प्राणों का जीवित वेग भरो !

जीवन की प्राचीन विषमता
रूढ़ि सकल, बंधन, दुर्बलता,

दुःख भरे मानव के व्याकुल
अंतर की शंका, ताप हरो !

1947

(4) नयी दुनिया

तुम आज विचारों के बल से,
जन ! रच दो दुनिया एक नयी !

यह उजड़ा वेश धरा का तो,
यह ग्रहण लगा शशि-राका तो,
आँखों को लगता बुरा-बुरा
पी ली मानों प्राचीन सुरा
तुम आज सृजन की घड़ियों में
जन ! रच दो दुनिया एक नयी !

तम के बादल काले-काले
गरज रहे हैं बन मतवाले,
घिरती घोर अँधेरी छाया
घेर रही मन को छल-माया,
तुम ज्योतिर्मय नव-किरणों से
जन ! रच दो दुनिया एक नयी !

उठता आता धुआँ गगन से,
व्याकुल मानव क्रूर दमन से,
शोषक-वर्गों का बल संचित
होगा निश्चय आज पराजित,
तुम आश नयी उर में भर कर,
जन ! रच दो दुनिया एक नयी !

1948

(5) संग्राम

आज जीवन की अमरता सोचना, अभिशाप है !

सामने जब नाश से उलझा हुआ संघर्ष है,
चाहना परलोक ? जब नव चेतना का हर्ष है,
पंथ पर नूतन चरण की शक्तिमय पदचाप है !

आज नूतन का पुरातन पर विजय का नाद है,
सृष्टि नव-निर्माण अविरत-साधना उन्माद है,
वज्र से फौलाद का अंतिम प्रखर आलाप है !

घोर झंझा के झकोरों में मरण से द्वन्द्व है,
प्राण पंछी नापता नभ; क्योंकि अब निर्बन्ध है,
वेदना-बोझिल-हृदय का मिट रहा संताप है !

बंधनों की अर्गला में बद्ध युग-जीवन न हो,
भय भरी उर में मनुज के एक भी धड़कन न हो,
हो मुखर हर आदमी जो आज नत, चुपचाप है !

बन सुदृढ़ संस्कृति सरल नव सभ्यता लो आ रही,
पूर्ण युग-जीवन बदलता औ' बदलती है मही,
नव लहर से विश्व का कण-कण बदलता आप है !

1947

(6) पीयूष-धारा

हो गया संसार मरघट,
आज कवि ! पीयूष की धारा बहाओ !

हो गये सारे गगन चुंबी भवन
लुंठित धरा पर ध्वस्त होकर,
आततायी, अदय, बर्बर

राक्षसों के लोटते हैं शव भयंकर,
आज नव-निर्माण की दृढ़ चेतना,
प्रत्येक जन-मन में जगाओ !

मौन आहुतियाँ अमित, नव बीज
भावी विश्व के बो मिट गयी हैं,
जूझ मानव राक्षसी मति-गति
लहर से खो गये, दुनिया नयी है,
सींच प्रतिपल स्वेद, शोणित,
स्नेह से युग-भूमि को उर्वर बनाओ !

रुग्ण जीवन-डाल, पल्लवहीन,
निर्बल, सूख प्राणों का गया रस,
दृष्टि खोयी-सी, मनुज की चेतना
को नाश के तम ने लिया ग्रस,
जागरण का तूर्य गूँजे,
प्रज्वलित जग, सूर्य-सम, रे जगमगाओ !

युग-चरण विजड़ित नहीं हों,
शक्ति-आशा-स्वर ध्वनित तूफ़ान डोले,
कोटि हाथों से उठे नव-राष्ट्र
जन-मन गर्व से जय मुक्त बोले,
रागिनी नूतन, उषा की रश्मि से
अब मृत्यु की छाया हटाओ !

1947

(7) युग-विहग

शून्य नभ में युग-विहग तुम
एक गति से ही उड़ोगे,
तुम उड़ोगे !

रुक नहीं सकते कभी भी

पंख उठते और गिरते ही रहेंगे,
थक नहीं सकते कभी भी;
राह पर आ मेघ घिरते ही रहेंगे,
विश्व को संदेश नूतन
मुक्ति का दे, तुम बढ़ोगे,
तुम बढ़ोगे !

अग्नि-पथ पर, स्वस्थ मन से,
आत्म-संबल के सहारे और निर्भय,
पद-प्रदर्शक, ज्ञान-दीपक,
नव-सृजन से, सर्वहारा-वर्ग की जय,
युग-विरोधी शक्तियों को
तुम चुनौती दे चढ़ोगे,
तुम चढ़ोगे !

1948

(8) जन-समुन्दर

अग्नि-पथ है, प्रज्वलित लपटें गगन में,
स्वार्थ, हिंसा, लोभ, शोषण, नाश रण में,
चल रहे हैं, पर, चरण युग के निरंतर,
साँस में हुंकारते मुठभेड़ के स्वर,
युग-विरोधी शक्तियों को दे चुनौती
हर क़दम पर, हर क़दम पर
बढ़ रहा दृढ़ जन-समुन्दर !

ये चरण युग के चरण हैं, कब झुकेंगे ?
ये शहीदों के चरण हैं, कब रुकेंगे ?
कौन-सा अवरोध आहत कर सकेगा ?
पंथ पर तूफ़ान आहें भर थकेगा !
ये करेंगे विश्व नव-निर्माण बढ़ कर
हर क़दम पर, हर क़दम पर
बढ़ रहा दृढ़ जन-समुन्दर !

नाश को ललकारती है युग-जवानी,
क्रांति का आह्वान करती आज वाणी,
प्राण में उत्साह नूतन ताज़गी है,
युग-युगों की साधना की लौ जगी है,
सामने जिसके ठहरना है असम्भव !
हर क़दम पर, हर क़दम पर
बढ़ रहा दृढ़ जन-समुन्दर !

1948

(9) मुक्ति की पुकार

बद्ध कंठ से सशक्त मुक्ति ही पुकार !

धैर्य पूर्ण उर सबल
लक्ष्य ओर दृढ़ चरण
व्यर्थ नाश-शस्त्र सब
व्यर्थ क्रूरता दमन
झुक सका न शीश, मिल सकी न क्षणिक हार !

अंध छा गया सघन
आज पर्व है प्रलय
राजनीति का कुहर
भर गया सहज निलय
तोड़-फोड़ सृष्टि-नाट्य ध्वस्त तार-तार !

तीव्र सिंह से गरज
मेघ से विशाल बन
चल पड़े निशंक सब
विश्व के नवीन जन
लाल-लाल सब जहान का बना सिँगार !

1947

(10) अजेय

मुझको मिली कब हार है !

तुम रोकते हो क्यों मुझे ?
तुम टोकते हो क्यों मुझे ?
धधका निराशा का अनल
तुम झोंकते हो क्यों मुझे ?
हैं अमर मेरे प्राण
मेरा अमर हर उद्‌गार है !

रुकना मुझे भाता नहीं,
थकना मुझे आता नहीं,
सह लक्ष-लक्ष प्रहार भी
झुकना मुझे आता नहीं,
प्रत्येक क्षण गतिवान जीवन
शक्ति का संसार है !

मैं बढ़ रहा तूफ़ान में,
ले क्रांति-ज्वाला प्राण में,
वरदान मुझको मिल रहा
प्रतिपद अभय बलिदान में,
नौका भँवर में हो फँसी
साहस अथक पतवार है !

1946

(11) ढहता महल

द्रोह-युग प्रत्येक मानव-वर्ग में संघर्ष,
है कहाँ जन-मुक्ति, सुख, स्वाधीनता का हर्ष !

क्रूर बर्बर घोर हिंसक नाश-वाहक द्वन्द्व,
प्राण जन के त्रस्त, जीवन-मुक्ति के पट बन्द !

कौन छाया-सा भयंकर देखता है घूर
ठीक सिर पर आ गया जो था अभी तक दूर !

बद्ध खूनी लाल पंजे में हुआ समुदाय
चीखता, रोदन करुण, नत प्रति निमिष निरुपाय !

स्वार्थ औ' पाखंड-संस्कृति से विनिर्मित भूत
पत्र, मिल, पूँजी, सबल कल, जाल-सा बुन सूत !

फल गयी मकड़ी, समाजी तन सतत घुल क्षीण
हो रहा जर्जर, धँसी ले आँख पीली दीन !

पर, नयी अब उत्तरी-ध्रुव से उठी आवाज़,
देखता हूँ विश्व, केवल रूस जनता राज !

दे रहा साहस, दिशा, संबल, सृजन की शक्ति
स्तम्भ मानवता सुदृढ़, पा शोषितों की भक्ति !
1946

(12) संक्रांति-काल

त्रस्त जीवन, खलबली चहुँ ओर, आहत मूक व्याकुल प्राण!

छोड़ता हूँ आज जर्जर क्षीण मृत प्राचीन संस्कृति प्यार,
चल पड़ा खंडित धरित्री पर बसाने को नया संसार,
स्तब्धता, सुनसान, पथ वीरान, गुंजित हो नयी झंकार,
आज फिर से नव सिरे से चाहता हूँ विश्व का निर्माण!
व्योम कुहराच्छन्न, गहरा तम घिरा, कम्पित धरा भयभीत,
विश्व-आँगन में मचा रोदन, खड़ी है दुःख की दृढ़ भीत,
राह जीवन की विषम है, हो रहीं जग-नाश की सब रीत
सूर्य-किरणों से खुलें सब द्वार, जीवन हर्ष हो उत्थान !

सभ्यता कल्याणमय, सुखमय, नवल निर्मित, सबल हो नींव,

एकता आधार पर जग के खड़े हों, जी सकें सब जीव,
ध्वस्त पूँजीवाद तानाशाह भू-नासूर फोड़े पीब,
शक्ति ऐसी चाहता जिससे जगत को दे सकूँ वरदान !

रूढ़ियों की जटिल जकड़ी लौह-कड़ियाँ झनझना कर तोड़,
अंध सब विश्वास, घेरे सर्प-से मन को, निमिष में छोड़
सभ्यता की डाल पर पटकी कुल्हाड़ी आज दूँगा मोड़,
टूटती-गिरती दिवारों पर, लगें फिर गूँजने मधु गान !

शक्ति का संग्राम, सागर में उठा उन्मत्त दुर्दम ज्वार,
तीव्र गति से टूट द्वीपी-तट, प्रखर बढ़तीं अनेकों धार,
शक्ति जन-जन की लगी है,आज किंचित मिल न सकती हार,
कौन कुचलेगा जगत में सर्वहारा वर्ग का अभिमान ?

ध्येय है आगे, चरण पथ पर बढ़ेंगे, है न कोई रोक,
स्वत्व का-अधिकार का संघर्ष झंझा-सा, न कोई टोक,
क्रांति की जलती-भभकती अग्नि में जब तन दिया है झोंक,
है न कोई मोह-ममता का, प्रलोभन का कहीं सामान !

जग बदलता है, जगत का हर मनुज बदले बिना अवरोध,
मानवोचित सभ्यता में हो रहे प्रतिपल निरन्तर शोध,
साधना दृढ़ शांत संयम से बँधी, थोथा नहीं है क्रोध,
मिल रहे जन-राष्ट्र, शोषण लूट भक्षक-नीति का अवसान!
1948

(13) पाषाण-उर

आज मानव का हृदय तो बन गया पाषाण !
ख़ून से विचलित नहीं होते तनिक भी प्राण !

जल गया है अग्नि में मधु स्नेह,
रिक्त अंतिम बूँद, जर्जर देह,
गिर रहा दुख के घनों से मेह,

टूट कर ढहता सुरक्षित गेह,
कष्ट-कंटक आपदाओं में फँसी है जान !

बढ़ रही है विश्व-भक्षक प्यास,
पी चुका इतना कि अटकी साँस,
है नहीं कोमल अधर पर हास,
क्रूरता, हिंसा, नहीं विश्वास,
कर्ण-भेदी गा रहा फूहड़ घृणा का गान !

उड़ रही मरुथल सरीखी धूल,
साथ उड़ते टूट सूखे फूल,
आश-तरु उखड़े सभी आमूल,
डूब जल में सब गये हैं कूल,
नाश का ज्वालामुखी फूटा, कहाँ निर्माण ?
1947

(14) मानवी-व्यापार

मानवी-व्यापार कितनी दूर !

दूर जन-जन से सहज उमड़ा हुआ मधु प्यार,
दूर जन-जन से सरल, सुख, शांति का संसार,
हो रहा है पीड़ितों का आत्म-गौरव चूर !

चाहता मानव कि भर लूँ स्वर्ण-निधि से कोष,
कर रहा अभियान निर्भय, है नहीं संतोष,
दानवी-बल नाश-हिंसा-भावना भरपूर !

नाज़ियों-सा क़ाफिला बन कर रहा प्रस्थान,
सत्य-शिव-सुंदर जलाने, सर्वनाशक गान,
देखते बरबाद करने के घृणित ग्रह घूर !

आततायी शक्ति का सूरज कहाँ है अस्त ?

आज ज्वाला-ग्रस्त दुर्बल वर्ग जग का त्रस्त,
आज तो पथ-भ्रष्ट मानव हिंस्र ख़ूनी क्रूर!
1947

(15) इतिहास

विश्व अस्थिर, प्रति चरण पर
बन रहा है नित्य नव इतिहास !

क्षण गिराते जा रहे हैं,
क्षण मिटाते जा रहे हैं,
आज देशों को धरा से,
युद्ध की गढ़-कन्दरा से,
ऊर्ध्व अविरत राष्ट्र अगणित,
ले रहे कुछ क्षीण अंतिम साँस !

कल प्रगति के जो शिखर पर
आज निर्बल शक्ति खोकर
पद-दलित हो, रजकणों-सम
हैं धराशायी, तिमिर-भ्रम,
खिल रहा उजड़े चमन में
भव्य आशा का कहीं मधुमास !

नीतियाँ औ' वाद कितने,
भिन्न जग के नाद कितने,
दे रही प्रतिपल सुनायी
आज ज़ोरों से मनाही,
बढ़ रही मन में निरन्तर
मनुज के आ विश्व-भक्षक प्यास !

1948

(16) झंझा में दीप

आज तूफ़ानी निशा है, किस तरह दीपक जलेंगे !

मुक्त गति से दौड़ती है शून्य नभ में तीव्र झंझा,
शीर्ण पत्रों-सी बिखरती चीखती हत त्रस्त जनता,
क्योंकि भीषण ध्वंस करतीं बदलियाँ नभ में चली हैं,
क्योंकि गिरने को भयावह बिजलियाँ नभ में जली हैं,
मेघ छाये हैं प्रलय के, नाश करके ही टलेंगे !

आज जन-जन को जलाना है न, निज गृह दीप-माला,
आज तो होगी बुझानी सर्व-भक्षक विश्व-ज्वाला,
तम धुआँ छा प्रति दिशा में घिर गया गहरा भयंकर
युग-युगों का मूल्य संचित मिट रहा, रोदन भरा स्वर,
कर्ण-भेदी लाल अंगारे स्वयं फटकर चलेंगे !

एकता की ज्योति हो; जिससे मिले मधु स्नेह अविरल,
और तूफ़ानी घड़ी में जल सके लौ मुक्त चंचल,
शक्ति कोई भी न सकती फिर मिटा, चाहे सुदृढ़ हो,
विश्व का हिंसक प्रलयकारी भयंकर नाश गढ़ हो,
फिर नहीं इन आँधियों में दीप जीवन के बुझेंगे !

1946

(17) होली जलादो

आज मेरी देह की होली जला दो !

घिर गया जब घोर अँधियारा गगन में
घुट रहे हैं प्राण सदियों से जलन में
विश्व ज्योतिर्मय करो भावी मनुज, लो -
आज मेरी देह की होली जला दो !

ज्वाल की लपटें समा लें अश्रु-सागर,

हो अशिव सब भस्म जग का मौन कातर,
मात्र उसको हर असुन्दर कण बता दो !
आज मेरी देह की होली जला दो !

ज्वाल होगी जो प्रलय तक साथ देगी
सूर्य-सी जल भू-गगन रौशन करेगी,
इसलिए, तम से घिरों को ला मिला दो !
आज मेरी देह की होली जला दो !

यह जलेगी भव्य शोभा संचिता हो,
घेर लेना विश्व तुम मेरी चिता को,
देखकर बलिदान की धारा बहा दो !
आज मेरी देह की होली जला दो !

1945

(18) अभियान के बाद

गूँजते रह-रह करुण-स्वर !

रक्त की नदियाँ बहा कर
दिग-दिगन्तों को हिला कर
थम गये निर्मम बवंडर,
आज जन-जन के व्यथित उर !
मुक्त युग-खग के दमित पर !

होम वैभव कर, निरन्तर
नृत्य दानव का भयंकर
हो चुका मानव-अवनि पर,
नाश हिंसा से चकित हर !
विश्व में मानों जड़ित डर !

1945

(19) प्रलय

उजड़ा पड़ा सारा नगर,
सूनी पड़ी सारी डगर,
चिडियाँ तृषित सहमी खड़ीं,
कुटियाँ सकल टूटी पड़ीं,
छायी अवनि-आकाश में दहशत !
आ सनसनाता है पवन,
क्रोधित प्रखर धधकी जलन,
ज्वाला ग्रसित अगणित सदन,
उर्वर हुआ, सूखा विजन,
दृढ़ उच्च दुख का बन गया पर्वत !

कण-कण गया भू का सिहर,
उर में बही भय की लहर,
हिंसक बढ़े जब घिर अमित,
क्रन्दन, मरण जन-जन दमित,
दुर्बल जगत सारा हुआ आहत !

1945

(20) इंकलाब

त्रस्त सदियों के घृणित इतिहास पर छा
क्रांति की लपटें धधकती हैं भयंकर,
रुद्ध प्राणों के दमन से बंद थे पट
टूट कर गिरते अवनि पर डगमगा कर !

'न्याय' के स्वर पर दबी थी विश्व जन-जन
की करुण दुख से भरी वाणी सतायी,
वह कहीं से राह पाकर फूट निकली
है व्यथा से चूर्ण रक्षा की दुहायी !

फूट निकली हैं उमड़ती एक के उपरांत

सरिताएँ विजन खोयी हुई-सी,
फूट निकला है कि लावा गर्म भीषण
गर्भ-भू से, विषमता धोयी हुई-सी !

आज जीवन मुक्ति का आह्वान आया
सुप्त जगती के कणों में चेतना है,
धमनियों में रक्त का संचार अविरल
वज्र-सा बल-वेग, अभिनव प्रेरणा है !

शक्तियाँ नूतन जगत-निर्माण करने
बढ़ रहीं नव-सभ्यता-आदर्श पर हैं,
विश्व के कल्याण के साक्षी बनेंगे
द्रोह जीवन-भावना-संगीत-स्वर हैं !

आँधियाँ काली क्षितिज पर उड़ रही हैं,
जीर्णता प्राचीन मिटती जा रही है,
हो रहे कोंपल नये विकसित अवनि पर,
सृष्टि नूतन वेश प्रतिपल पा रही है !

देश और समाज की क्षय नीतियाँ मिट
नव सरल शासन व्यवस्था बन रही है,
लूट-शोषण की प्रथा को छोड़कर, अब
एक नूतन भव्य दुनिया बन रही है !

भव्य दुनिया वह कि जिसमें रह सकेंगे
सम दुखों में, सम सुखों में वर्ग सारे,
भव्य दुनिया वह कि जिसमें रह सकेंगे
विश्व-मानव एक-सा ही रूप धारे !

1948

(21) जागरण

संसार के तरुण जगे
प्रत्येक के नयन जगे
विद्रोह-अग्नि से दिशा जली,
दिशा जली !

हुंकार जन-चरण बढ़े
ललकार जन-चरण बढ़े
लो साम्य-सूर्य से निशा मिटी,
निशा मिटी !

जन-शक्ति का प्रहार है,
उन्मुक्त राह-द्वार है,
नव विश्व-सृष्टि है -उषा जगी,
उषा जगी !
1948

(22) परिवर्तन

दुनिया का कण-कण परिवर्तित
गूँजा जीवन-संगीत नवल,
प्रतिक्षण सुंदरतर निर्मिति हित
है व्यस्त सतत जन-जन का बल !

सदियों का सोया जागा है
युग-मानव नव बन आया है,
जल जाएगा विश्व अशिव सब
यह अनबुझ ज्वाला लाया है !

मिथ्या विश्वासों के शव पर
नव-संस्कृति-ज्वाला रही बिखर,
पिछड़ी सोयी मानवता के

नयनों में नव-आलोक प्रखर !

आँसू, लूट, नाश का निर्मम
रक्तिम, वहशी इतिहास गया,
क्षत-विक्षत जग के आँगन का
होता अब तो निर्माण नया !
1947

(23) उद्‌बोधन

जीवन मुक्त करो !

सदियों की बद्ध शृंखला,
निष्क्रिय खंडित भ्रमित कला,
तमसावृत सृष्टि अर्गला,
नूतन रवि-रश्मि प्रखर से सब छिन्न करो !
तन-मन मुक्त करो !

जन-जन पीड़ित अपमानित,
बंधन-ग्रस्त अवनि लुंठित,
निर्बल, नत, मूक, पराजित,
स्वाभिमान मर्माहत, जड़ता भंग करो !
जन-जन मुक्त करो !

ठोकर, क्षुधा, अभाव, मरण,
कटु जीवन का सूनापन,
लज्जा का इतिहास, दमन,
सामूहिक हुंकारों से विद्रोह करो !
जग को मुक्त करो !

1947

(24) सम्बल

प्रगति ही ध्येय जीवन का, बना संबल !

गहन जीवन-समुंदर में
रहीं प्रतिबार उठ-गिर वेग से लहरें,
बना सुख-दुख किनारे
ज़िन्दगी बहती सरल-दृढ़ बन, बिना ठहरे,
उमड़ते ज्वार के सम्मुख
तनिक भी प्राण मानव के नहीं सिहरे,
जटिलता राह की कब कर सकी दुर्बल ?

झुका कब शीश मानव का,
निमिष भर, पत्थरों की चोट से पीड़ित,
हुआ कब धैर्य जीवन में
सबल युग-प्राण का किंचित कहीं विगलित,
प्रहारों से हुआ देदीप्य मुख,
बढ़ती गयी तन कांति हो ज्योतित,
सतत युग-साधना-व्रत चल रहा अविरल !

हिमालय-सी सुदृढ़तम दीर्घ
बाधाएँ खड़ी हैं राह में अड़कर,
बरसते व्योम से शोले, धधकते
लाल, धू-धू जल रहा हर घर,
गिरा देना कठिन पथ पर
हवाएँ चाहतीं बहकर प्रखर सर-सर,
चरण पर, बढ़ रहे हैं, ज्वाल में जल-जल !

बनी तूफ़ान-स्वर साथिन
अमर यौवन भरी ललकार यह मेरी,
डोलती है वायु में उन्मुक्त
जीवन-चेतना-तलवार यह मेरी,

हिला देगी सुदृढ़ पर्वत-
शिला-अन्याय की, हुंकार यह मेरी,
हृदय में आग, नवयुग की मची हलचल !
1948

(25) नया दृश्य

सामने सौ-सौ विपथ के मृदु प्रलोभन
घेर साधक को, रहे कर मुग्ध नर्तन !

मुक्ति औ' स्वच्छंदता का उर दबाकर
बाँसुरी तम-युग विजन की कटु बजाकर,

जो सफलता पर अशिव की गा रहा है
समय उसका भी मरण का आ रहा है !

शीघ्र होगा अब दनुजता-मान-मर्दन
आज अंतिम टूटते हैं मनुज-बंधन !

शीघ्र गूँजेगी गगन में महत मानव
लोकवाणी शक्तिशील और अभिनव !

दे सकेगी पीड़ितों को सुदृढ़ संबल
विश्व के सब शोषितों को स्नेह निश्छल !

हत प्रताड़ित नत दुखी बेचैन जन-जन
सुन सकेंगे तूर्य नव उन्मुक्त जीवन !

चिन्ह नवयुग के प्रखर देते दिखायी,
ज्योति नूतन, सृष्टि-कण-कण में समायी !

शीघ्र उभरेगा, जगत का हर दबा स्वर,
इस बदलती शुभ घड़ी में जाग 'सुंदर' !

आज दुर्बल क्षीण स्वर देता न शोभन,
आज कवि का हो सबल नव भाव-चित्रण !
1947

(26) नयी रचना

नवीन ज्योति की किरण
सुदूर व्योम से
सघन युगीन अंधकार
छिन्न-भिन्न कर
उतर रही मिटा निशा
चमक उठी दिशा-दिशा !

नवीन मेघ की झड़ी
सुदूर व्योम से बरस पड़ी
नहा गया नगर
नहा गयी गली-गली
बहा गयी सभी
पुराण जीर्णता गली-सड़ी !

बरस रही नये विचार की झड़ी
नहा रहा मनुष्य विश्व का,
विकास-पंथ द्वार पर
खड़ा मनुष्य विश्व का,
कि खिल रहे समाज में
नवीन फूल,
सृष्टि ने बदल लिए दुकूल !

नव सुगन्ध से भरी हवा
सुदूर व्योम से
अशेष वेग ले
नवीन लोक का रहस्य विश्व को बता गयी !
अथक प्रयत्न शक्ति दे गयी !

उभर रहा समाज का नवीन शृंग !
बन रहा नया विधान
जन प्रधान
ध्वंस-सृष्टि
संग-संग !
1948

(27) हुंकार

हुंकार हूँ, हुंकार हूँ !
मैं क्रांति की हुंकार हूँ !
मैं न्याय की तलवार हूँ !

शक्ति जीवन जागरण का
मैं सबल संसार हूँ !
लोक में नव-द्रोह का
मैं तीव्रगामी ज्वार हूँ !

फिर नये उल्लास का
मैं शांति का अवतार हूँ !
हुँकार हूँ, हुंकार हूँ !
मैं क्रांति की हुंकार हूँ !
1944

(28) नयी निशानी

जन-जन के मानस पर रूढ़ि पुरातन हावी
पर, निश्चय, नव किरणों से चमकेगा भावी !

प्रतिद्वन्द्वी, प्रतिगामी, प्रतिध्वनि सकल विरोधी
तम का परदा काला, दुर्गमता अवरोधी,

नव लहरों के अविरल धक्कों से हो आहत
हो जाएगा सभी प्रगति के चरणों पर नत !

युग गति का वेग असह्य दुर्जय भारी दुर्दम
सतत प्रखर जिसके हैं विद्युतमय सकल क़दम !

चट्टानें तड़क रहीं, भीषण स्वर, लुंठित
झञ्झा के पीछे हो खंडित शिथिल पराजित !

टूटीं जटिल सभी आज समाजी सीमाएँ,
धू-धू कर धधक रहीं प्राचीन विषमताएँ !

भू-कंपन से उखड़ी जाती जड़ें पुरानी,
दीख रही धरती पर उगती नयी निशानी !

एक नयी दुनिया का संदेश सुना जग ने,
सावधान हो, सोये जन, मुक्त जगे लगने !

सत्य प्रखर हो सम्मुख आया मानवता के,
स्वर फूट पड़े चहुँ ओर नयी ही समता के !

परिवर्तन, विप्लव युग, है व्यस्त सतत मानव,
लाने को अवनी पर ज्योतिर्मय युग अभिनव !
1946

(29) युग-निर्माता

झंझा में झूले वह जिसको निज पथ की पहचान
आग जलाकर चले वही जिसके चेहरे पर मुसकान !

जगमग उसके नेत्र कि जिसमें जीवन तीव्र प्रकाश,
धड़कन उसके उर में, जिसमें भावी की है आश,

सुप्त पड़ा निर्जीव वही जिसका तन ठंडी लाश
गंभीर हिमालय-सा वह; है जिसका शीश महान !

ज्वाला जिसके अंग-अंग में, दे प्राणद संदेश,
युग-निर्माता वह जिससे दूर नहीं हो जीवन-क्लेश !

सैनिक वह ही केवल जिसका सुदृढ़ अहिंसक वेष,
युग-संचालक, मुखरित हो, जब छाया हो सुनसान !

तलवार वही साधक जिससे कँपता हो संसार,
ढह कर गिर जाए झट, सरकेवह आधार !

तूफ़ानी सागर में खे ले नौकावह पतवार,
ऐसा हो जग की जनता के नेता का अभिमान !
1945

(30) धधकती आग

गीत गाने के लिए मेरे विकल हैं प्राण !

क्षितिज-रेखा पर दिखाई दे रहे हैं
दग्ध उजड़े लोक के ही दाग़,
और चारों ओर धधकी विप्लवी
भीषण मचल कर नाशकारी आग,
दूर हो अभिशापप्रस्तुत सृष्टि का वरदान !

असह, देती हैं हिला, पीड़ा पुकारें,
क्रूर-उर-पाषण भी झकझोर,
आदमी का दर्प पागल बन, धुआँ
ज्वालामुखी-सा फट रहा है घोर,
मिट गया है आज मानव का सकल अभिमान !

देखता हूँ, हो रहा है घोर बर्बर
नृत्य-तांडव, हिंस्र निर्मम ध्वंस,
देखता हूँ, हो रहे हैं राख ज़िंदा
तड़प मानव तोड़कर दम, ध्वंस,

दीखते दीवार पर चित्रित करुण आख्यान !
1947

(31) गाड़ता हुआ

हो रहा है दुंदभी का घोष द्वार-द्वार पर,
हिल रही है सुप्त कब्र-कब्र नव-पुकार पर !

पूर्व रूप पर नवीन शक्ति जैतवार है,
दर्प की शिला तड़क रही, नया प्रहार है !

ज़िन्दगी ने कर दिये दलित सशक्त-कठघरे,
भूमि पर गिरा दिये कुलाधि पात्र विष भरे !

तारतम्य रोशनी सदृश अटूट चल रहा,
दाघ-दाझना से मिट रहा विपक्ष बल महा !

आफ़तों के बादलों के झुक गये हैं गर्व सिर,
और गर्जनों का है दहाड़ता हुआ विलीन स्वर !

आ रहा है युग नया-नया लथाड़ता हुआ,
दुश्मनों की मौत कर जघन्य गाड़ता हुआ !
1948

(32) शहीदों का गीत

यह शहीदों का अमर पथ
रोकना इसको असम्भव !
मेटना इसको असम्भव !

चल रहे जिस पर युगों से दृढ़ चरण शत-शत निरंतर,
एक धुन है, स्फूर्तिमय क्रम, गान में ले प्रलय का स्वर,
मध्य की अठखेलियाँ तूफ़ान - झंझावात अगणित
ये थके कब, ये रुके कब, ये झुके कब, प्राण के हित?

चल रहे अविराम गति से
रोकना इनको असम्भव !
यह शहीदों का अमर पथ
मेटना इसको असम्भव !

रोक सकते राह के कंटक नहीं, रोड़े नहीं, भय,
तिमिर भी क्या कर सकेगा, हो चुका पथ पूर्व-परिचय,
शृंखलाएँ बंधनों की तोड़ने ये बढ़ रहे हैं,
स्वत्व के संग्राम में औ' मुक्त होने लड़ रहे हैं,
ये अमर बन मिट रहे हैं
रोकना इनको असम्भव !
यह शहीदों का अमर पथ
मेटना इसको असम्भव !

वेदना शत-शत, मरण-दुख, अश्रु, ममता प्यार, क्रन्दन,
कर नहीं सकते विकंपित मोह के अविराम साधन,
दण्ड, अत्याचार, पशुबल, नाश के हथियार भीषण,
कर सकेंगे मुक्ति-पथ से क्या विपथ? जब है, सुदृढ़ मन!
हो चुकी भीषण परीक्षा
रोकना इनको असम्भव !
यह शहीदों का अमर पथ
मेटना इसको असम्भव !

विश्व के कल्याण की शुभ-भावना साकार करने,
मुक्त जीवन की प्रखरता को बसा, दुख-क्लेश हरने,
ये जगे जब-जब जगत में, न्याय के स्वर को दबाया
ये रहे बस मौन जब-तक, ज़ोर शोषण ने न पाया,
शक्तिमय हुंकार इनकी
रोकना जिसको असम्भव !
यह शहीदों का अमर पथ
मेटना इसको असम्भव !
1946

(33) मुझे है याद

मुझे है याद तेरा क्रूर पागल रूप हत्यारा,
बहायी थी जमीं पर बेरहम जब रक्त की धारा,
जलाये गाँव थे पूरे, उजाड़ी बस्तियाँ अगणित
मुझे है याद जुल्मों का दमन इतिहास वह सारा !

नयन जिनने कि तेरी दानवी तसवीर देखी है,
हृदय जिसने असह घुटती हुई वह पीर देखी है,
कभी क्या भूल सकती हैं दुखी आहें गरीबों की
कि जिनने मूक मिटने की सदा तक़दीर देखी है ?

बग़ावत के गगन में मुक्त हो झंडे उठाये हैं,
शहीदी शान से जिनने अभय हो सिर कटाये हैं,
चरण जिनके सदा गतिशील आगे ही उठे दुर्दम
सतत संघर्ष में हर बार जिनने घर लुटाये हैं !

जलन की आग जो धधकी हृदय रह-रह जलाती है,
कहानी सिसकियाँ-आँसू भरी निर्मम सताती है,
चुनौती आज देता है सबल पुरुषार्थ यह मेरा
कि साँसें हर घड़ी तूफ़ान के धक्के बुलाती हैं !

कि तेरे राज में हमने जवानी को मिटाया है,
ठिठुरते नग्न बच्चों को सदा भूखा सुलाया है,
सुनहली भवन-जीवन-स्वप्न की दुनिया बनाने की
हमारी कामना को धूल में तूने मिलाया है !

जला देगी नयन के आँसुओं से फूटती ज्वाला
सभी बंधन विषमता के, अबुझ प्रतिशोध की हाला,
हमारी धमनियों में रक्त की नूतन भरी लहरें
प्रहारों से मिटेगा वर्ग शोषक क्रूर मतवाला !
1947

(34) कला

जो सुदूर स्वप्न-राज्य की विहारिका
व्योम पार देश की रही निहारिका
कर्म-मार्ग हीन, स्वर्ण-विश्व साधिका
द्वन्द्व से विमुख, सदा नवीन बाधिका
हेय व्यर्थ युग-उपेक्षिता अमर कला !

धूल से विलग विचार वास्तविक नहीं
झूठ शब्द-जाल चित्र-मात्र है वही
जो मनुष्य भाव-राग से जुड़ा न हो
दर्द-हास तार से सहज बुना न हो
कब समाज में टिका ? कहाँ अरे चला ?

व्यक्त सिर्फ़ आज के सवाल चाहिए
तम नहीं प्रभात लाल-लाल चाहिए
व्यक्ति की करुण कराह है उतारनी
आग जो दबी उसे पुनः उभारनी
सब कुरीतियाँ मिटें, प्रहार ज़लज़ला !

भावना निराश ना मृतक समान हो
अश्रु औ' रुदन नहीं, न मोह गान हो,
आज जीर्ण देह तोड़ता मजूर है
पर, समानता समय बहुत न दूर है,
कवि मुखर करो ! य' किसलिये कला भला ?
1948

(35) युग कवि से

ऐसे गीत नहीं गाने हैं !

जो गति का साथ नहीं देंगे
गिरते को हाथ नहीं देंगे

निर्धन त्रस्त उपेक्षित व्याकुल
जनता के भाव नहीं लेंगे,
युग कवि ! तुमको हरगिज़, हरगिज़
ऐसे गीत नहीं गाने हैं !

भूल जगत, मानव-आवाहन
सर्वस्व समझ नभ-आकर्षण
पहले तारक-दल का सुनना
मूक स्वरों का मौन-निमंत्रण,
सपनों के निर्जीव अचेतन
माया गीत नहीं गाने हैं !

जिनमें जीवन का वेग नहीं
दुनिया जिनकी है दूर कहीं
जो मनुज-हृदय को शिथिल करें
जो बदल न पाएँ रूढ़ मही,
उर उत्साह मिटाने वाले
रोदन गीत नहीं गाने हैं !

नक़ली भावों के हलके स्वर
क्या हुए कभी भी कहीं अमर
जब तक सुख-दुख का अनुभव कर
न कहोगे जीवन-सत्य प्रखर,
अनुभूतिहीन मन से निकले
थोथे गीत नहीं गाने हैं !

1946

(36) मंज़िल कहाँ ?

है अभी मंज़िल कहाँ ?

चल रहा हूँ राह पर अभिनव लिए विश्वास,
लक्ष्य का मिलता कहीं किंचित नहीं आभास,

द्रौपदी के चीर-सा यह बढ़ रहा है पथ,
इति कहाँ ? बीता नहीं दुर्गम अभी तक अथ,
छोर क्या ? आँचल कहाँ ?

रात के घनघोर तम में हिल रहे हैं पेड़,
भूत-सी लगती विजन में मृत्तिका की मेड़
विश्व को उल्लू भयंकर शाप लाया है,
रात रानी-कोप का क्षण पास आया है,
स्नेह के बादल कहाँ ?

जूझना है, जो खड़ी हैं सामने चट्टान,
और करना है नये युग का सबल निर्माण,
दूर जाना है, अथक साहस चरण के बल,
ज्योति-अंतर की जगाकर वेग से अविरल,
चाँद का संबल कहाँ ?

1948

(37) पिछड़े हुए राष्ट्र से

पिछडे हुए हो तुम
बढ़ो, आगे बढ़ो
जब बढ़ रहा संसार !
नव विश्वास,
नूतन ध्येय संस्कृति का,
अमर वरदान युग का
मुक्ति का, स्वातन्त्र्य का,
दृढ शक्ति का,
उत्सर्ग का !
नूतन प्रगति-पथ पर
सबल रथ
तीव्र गति से राह समतल कर रहे हैं,
पंथ को अवरुद्ध करते
दीर्घतम पाषाण औ'

फिसलन भरी भारी शिलाएँ,
घोर प्रतिद्वन्द्वी हवाएँ
दृप्त चरणों से दबाते जा रहे हैं !
टैंक जैसी
विश्व की बढ़ती हुईं
करती हुईं मुठभेड़ अभिनव शक्तियाँ
जब बढ़ रही हैं
गढ़ रही हैं
गान गा स्वातन्त्र्य का;
पद-चिन्ह उनके देखकर
इतिहास के विद्रोह पृष्ठों में,
बढ़ो, तुम भी बढ़ो !
परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़कर
अज्ञानता की रूढ़ियों को तोड़कर
प्राचीन गौरव-गान के
बंदी उठो, बंदी उठो !
तुम भी प्रगतिमय शीघ्र होकर
विश्व के मुख पर दिखो,
देदीप्य बन नक्षत्र-से चमको !
सजग हो
उठ पड़ो ओ, राष्ट्र सोये,
आज तो हुंकार कर,
ललकार कर !

युग-क्षितिज पर जब
रक्त जैसी लाल आभा छा रही है,
चेतना जीवन
प्रभाती चिन्ह स्वर्णिम रश्मियों के
आज पृथ्वी पर पड़े हैं,
देख जिनको विश्व सारा जग गया है
और तुम सो ही रहे हो ?
जग उठो तुम, जग उठो

जब जग गया संसार !
हो पिछड़े हुए
आगे बढ़ो, आगे बढ़ो
जब बढ़ गया संसार !
1947

(38) ज़िन्दगी की शाम

यह उदासी से भरी
मजबूर, बोझिल
ज़िन्दगी की शाम !
अपमानित
दुखी, बेचैन युग-उर की
तड़पती ज़िन्दगी की शाम !

मटमैले, तिमिर-आच्छन्न, धूमिल
नीलवर्णी क्षितिज पर
आहत, करुण, घायल, शिथिल
टूटे हुए कुछ पक्षियों के पंख
प्रतिपल फड़फड़ाते !
नापते सीमा गगन की दूर,
जिनका हो गया तन चूर !
धुँधला चाँद
शोभाहीन
कुछ सकुचा हुआ-सा झाँकता है,
हो गया मुखड़ा
धरा को देखकर फीका,
सफ़ेदी से गया बीता,
कि हो आलोक से रीता !
गया रुक एक क्षण को
राह में सिर धुन पवन

सम्मुख धरा पर देख

जर्जर फूस की कुटियाँ
पड़ीं जो तोड़ती-सी दम,
घिरा जिनमें युगों का सघन-तम !
और जिनमें
हाँफ़ती-सी, टूटती-सी
साँस का साथी पड़ा है
हड्डियों को ढेर-सा मानव,
बना शव !
मौनता जिसकी अखंडित,
धड़कता दुर्बल हृदय
अन्याय-अत्याचार के
अगणित प्रहारों से दमित !
अभिशाप-ज्वाला का जला,
निर्मम व्यथा से जो दला
जिसको सदा मृत-नाश का
परिचय मिला !
जो दुर्दशा का पात्र,
भागी, कटु हलाहल घूँट जीवन का
मरण-अभिसार का
निर्जन भयानक पंथ का राही
थका, प्यासा, बुभुक्षित !

कह रहा है सृष्टि का कण-कण
'मनुजता का पतन' !
असहाय हो निरुपाय
मानवता गिरी,
अवसाद के काले घने
अवसान को देते निमंत्रण
बादलों में मनु-मनुजता आ घिरी !
उद्यत हुआ मानव
बिना संकोच, जोकों-सा बना,
मानव रुधिर का पान करने !

क्रूरतम तसवीर है,
है क्रूरतम जिसकी हँसी
विष की बुझी !

पर,
दब सकी क्या मुक्त मानवता ?
सजग जीवन सबल ?
यह दानवी-पंजा
अभी पल में झुकेगा,
और मुड़ कर टूट जाएगा !
मनुजता क्रुद्ध हो
जब उठ खड़ी होगी
दबा देगी गला
चाहे बना हो तेज़ छुरियों से !
सबल हुंकार से उसकी
सजग हो डोल जाएगी धरा,
जिस पर बना है
भव्य, वैभव-पूर्ण
इकतरफ़ा महल
(पर, क्षीण, जर्जर और मरणोन्मुख !)
अभी लुंठित दिखेगा,
और हर पत्थर चटख कर
ध्वंस, बर्बरता, विषमता की
कथा युग को सुनाएगा !
जलियानवाला-बाग़-सम
मृत-आत्माओं की
धरा पर लोटती है आबरू फिर;
क्योंकि गोली से भयंकर
फाड़ डाले हैं चरण
दृढ़ स्वाभिमानी शीश
उन्नत माथ !
जिन पर छा गयी

सर्वस्व के उत्सर्ग की
अद्‌भुत शहीदी आग,
उसमें भस्म होगा
ध्वस्त होगा राज तेरा
जुल्म का, अन्याय का पर्याय !

पर, यह ज़िन्दगी की शाम
अगणित अश्रु-मुक्ताओं भरी,
मानों कि जग-मुख पर
गये छा ओस के कण !
चाहिए दिनकर
कि जो आकर सुखा दे
पोंछ ले सारे अवनि के
प्यार से आँसू सजल।
जिससे खिले भू त्रस्त
जीवन की चमक लेकर,
चमक ऐसी कि जिससे
प्रज्वलित हों सब दिशाएँ,
जागरण हो,
जन-समुन्दर हर्ष-लहरों से
सिहर कर गा उठे

अभिनव प्रभाती गान,
वेदों की ऋचाओं के सदृश !
बज उठे युग-मन मधुर वीणा
जिसे सुन जग उठें
सोयी हुई जन-आत्माएँ !
और कवि का गीत
जीवन-कर्म की दृढ़ प्रेरणा दे,
प्राण को नव-शक्ति
नूतन चेतना दे !
1947

(39) जब-जब

जब-जब बढ़ीं क्रुद्ध लहरें गरजती हुईं
तब-तब चलायी थी नौका,
समुन्दर चकित था !

जब-जब गिरीं बिजलियाँ ये लरजती हुईं
तब-तब बढ़ाये क़दम दृढ़,
निलय भी नमित था !
1948

(40) विश्वास है !

विश्वास है
एक दिन काली घटाओं से घिरा आकाश
खुल कर ही रहेगा !

धूप के दिन
एक क्या अगणित
धरा पर
ज्योति में डूबी
सरल उजली हँसी हँसते हुए
आकर रहेंगे !
तुम रुको मत
इस बरसते कल्प में जीवन-प्रवासी,
भीग जाने का कहीं भय
रोक ले गति को न,
तुम इतना करो विश्वास
आगे लाल-किरणें राह में
बिखरी मिलेंगी !
सूख जाएगा सभी जल
आज जो प्रति अंग को कंपित किये है,
हार जाएगा

सतत गतिवान धारा से
विरोधी मेघ
जो जल-कण अमित संचित किये है !
तम भरी गहरी घटाओं के तले

है टिमटिमाता दीप
मानव के अमर विश्वास का !
पर, जो अँधेरे की सघनता में
कहीं खो-सा गया है;
ढूँढ़ उसको तुम
जलाओ दीप अपना,
एक से अगणित जलेंगे दीप जगमग !
जो तमिस्रा भंग कर
नव स्वर्ण-पथ-रचना करेंगे !
क्योंकि
भावी विश्व के विश्वास की
लौ जल रही है !

इसलिए विश्वास है
छायी हुई संध्या समय संक्रांति की
धूमिल अँधेरी पार कर
नव लाल जीवन का सबेरा
व्योम से लाकर रहेगी !
1948

(41) बहुत हुआ बस रहने दो

दीख रही हैं भरी घृणा से
आज तुम्हारी आँखें,
चेहरे की सिहरन बतलाती है
घोर उपेक्षा के भावों को;
और तुम्हारी मुक्त हँसी में
कितना व्यंग्य भरा है,

कितना अपमान भरा है !
बातों का आशय इतना संशयग्रस्त
कि बिलकुल भी पता नहीं पड़ पाता
सत्य रहस्य तुम्हारा
मेरे प्रति इस निर्मम आकर्षण का !
जिससे मैं बेचैन तड़प उठता हूँ
मूक सिनेमा के चित्रों के पात्रों के समान
होंठ उठाकर रह जाता हूँ मौन !
कंठ से निकले स्वर
अन्दर की अन्दर पी जाता हूँ,
सुन लेता हूँ हर उलटी-सीधी बातें।
पर, मन भर-भर आता है
कि कौन हो तुम जो मेरे चुप रहने पर
आपत्ति करो ?
नाहक मुझको तंग करो ?
उकसाओ, मैं बोलूँ
और तुम्हारी बेहूदी व्यर्थ अनर्गल
बातों का उत्तर दूँ ?
जिनका अर्थ नहीं कोई,
जो रुचि से मेल नहीं खातीं,
जिनको सुनकर भाव-लहरियाँ
न हृदय में आ टकरातीं !
बहुत हुआ बस रहने दो
मत समझो इस चुप्पी का अर्थ
कि मैं निरा मूर्ख बुद्धि-हीन हूँ,
मत समझो तन निर्बल है तो
मन से भी शिथिल दीन हूँ !
मेरे उर का प्याला
लबरेज़ भरा है जीवन-रस से,
मेरे अन्दर की हर धमनी में
नूतन रक्त दौड़ रहा है
बिजली की रेल सरीखा !

मेरी आँखों में
स्नेह भरा है सागर-सा,
आत्मा में
दृढ़ता, बल, स्वाभिमान, ओज भरा है
सूरज की ज्वाला-सा अक्षय !
जिसको
परिवर्तन औ' षड्यंत्र
मिटाने में क़ामयाब हो न सकेंगे !
जिसकी
युग-युग से अविरल जलती लौ की
आब म्लान न हो पाएगी;
चाहे एक बड़े पैमाने पर
असमय टूट पड़ें
अगणित सूर्य-ग्रहण !
निश्चय होगा प्रति अंग दहन।
मत जूझो, मत पूछो आगे
बहुत हुआ बस रहने दो !
मेरी जीवन-धारा को
निज पथ पर बहने दो !
1946

(42) मन

मोर-सा मन
फूल-सा तन
उल्लसित पुलकित
सरल
हो स्नेहमय
मदमत्त सुख की पा हिलोरें
तप्त-अन्तर-उष्णता भंगी बयारें
हो उठा चंचल
कि देखे जब गगन में
कृष्णवर्णी घोर 'निम्बस' मेघ !

सविता की
प्रखरतम रश्मियों को ढक लिया
मानों विजन मरुथल सहारा से
उठी है धूल
आँधी रेत की
छूने गगन की सरहदें !

उत्कर्ष !
मेरी हड्डियों का,
ख़ून का
लघु पावभर के बोझ का
कुछ फड़फड़ाती नस लिए
अंतर उठा रे
हर्ष से-उल्लास से हिल-डोल,
मानो बर्फ़ सेकोई
हिमालय के शिखर पर
बद्ध शीतल झील सुंदर
फट पड़ी हो,
खिल पड़ी हो
दूध-सी !
1948

(43) कौन से सपने

कौन से सपने
लगे अपने
निरन्तर
साधना साकार करने जो
हृदय तन से लगे तपने ?

अरे मन !
बोल तो रे
कौन-से सपने ?

भर रहे हैं शक्ति ऐसी
दे रही जो
प्रेरणा, गति, चेतना,
घन फट रहे
औ' उड़ रही है वेदना !
उल्लास की अविरल उमंगें
उर-समुन्दर की तरंगें
उठ रही हैं, गिर रही हैं

और मुखड़े पर
नयी ही आज
रेखाएँ दिखाई दे रही हैं !
कौन-सा सुख-भाव वर है
सुघर, सुन्दर, अमर जो श्रेष्ठतर है,
हो गया हलका
कि जिससे बोझ जीवन का
युगों की कामना का चित्र भी रंगीन
अन्तर-दाह शीतल लीन ?
1948

(44) निशा का युग

अंधकार में डूबा हुआ
घिरा संसार,
समस्त
नयन की सीमा तक
गहन अंधकार
बेछोर घोर !

ग्रस्त सभी
लघु-क्षुद्र वस्तुएँ, विशाल प्रतिमाएँ
शिव सुंदर सत्य सार
घन अंधकार !

स्वच्छ नये जीवन से उभरा स्वस्थ सार
औ' सब अशिव, असुंदर, असत्य भार
उखड़ा जीर्ण निर्जीव भार !
सड़कें, मकान, पशु-पक्षी,
घास, पेड़, धूसरित मैदान,
मनुज, रंगीन मेघ,
झिलमिल असंख्य तारक;
पार्थिक संचय
घन अंधकार लय।
मानों जग को शव समझ
मूक ठंडे दिल से
अदृश-शक्ति ने बिछा दिया हो
काला ला कफ़न !
और जिसके भीतर
जानदार देह तड़प उठती हो
बार-बार,
रह-रह
श्वास-पंथ के लिए छिद्र एक पाने !

पथ-हारा मन
भूला-भटका थकित-तृषित
खोज रहा अभिनव आलोक
शोक में डूबा हुआ
जीवन का अभिलाषी
सहम गया
चारों ओर देख अंध-कूप !

गतिरोध ?
नहीं,
है शाश्वत इसका
मानव-गति से विरोध,
मानव तो

गतिशील, नित्य अभिनव, परिवर्तित
उसके जीवन का है सत्य यही
क्या उसकी स्वाभाविक गति
रुकी कहीं ?
उसकी छाती पर से
लोहे के इंजन जैसे अगणित
सघन-निशा युग ढल जाएंगे !
सहन किये हैं उसने
बर्फ़ीले युग
आँधी भूकम्पों के युग
ज्वाला के युग,
भयभीत न हो !
घन अंधकार
अरे मिलेगी, अरे मिलेगी
प्रकाश की नयी किरण
भर कर उर में
ज्योतिर्मय जग की आश
अटल विश्वास !
नहीं मन हार
कभी मत हार
माना फैला
घन अंधकार !
1947

(45) जीवन-दीप

अँधेरा है, अँधेरा है !
कि चारों ओर जीवन में
निविड़ तम का बसेरा है !
कि जिसने सब दिशाओं को
कुटिल भय पाश में भर
मौन घेरा है !
दिखाई कुछ नहीं देता

पलक की नाव मेरी लय
सघन-तम-सिंन्धु में !
देखा क्षितिज में दूर तक
पर, कुछ न सूझा
और भी गहरा उमड़कर तम
धुआँ-सा बन
कड़कते बादलों-सा छा
हृदय में कर उठा चीत्कार -
छल, रंगीन यह संसार !
धोखा है कि धोखा है !
सनातन
प्राण का अंतिम बसेरा ही
अँधेरा है !
विवश हो
काँपता मन, काँपता जीवन
जटिल हो बढ़ रही उलझन,
अँधेरा है, अँधेरा है !

पर, बह रहा
अविराम जीवन-स्रोत
अनदेखा किये तम
सामने,
जिसमें छिपी हैं
सर्वभक्षक यातनाएँ घोर
चारों ओर !
संशय है; अधूरा ज्ञान है।

पर, बह रहा
जीवन सबल झरना;
कि किंचित सोचना रुकना
बुरा होगा यहाँ वरना,
निमिष भर को थकित होकर

अँधेरे से चकित होकर
अशिव के सामने झुकना
बुरा होगा यहाँ वरना !
ज़रा भी ठोकरों से हिल
अवनि पर एक पल झुकना
गिरा देगा,
तुम्हारी बाहुओं का बल
अथक संबल
शिथिल होकर
भयावह काल के सम्मुख
अँधेरे में सदा को
लुप्त हो मिट जाएगा।
मात्र जीवन-शक्ति
अंतर-चेतना से
रह सकेगा मौन
दृढ़ निष्कंप
फैले इस अँधेरे में,
तुम्हारी साधना का दीप,
वांछित कामना का दीप !
1947

(46) रात का आलम

ठंडी हो रही है रात !
धीमी
यंत्र की आवाज़
रह-रह गूँजती अज्ञात !

स्तब्धता को चीर देती है
कभी सीटी कहीं से दूर इंजन की,
कहीं मच्छर तड़प भन-भन
अनोखा शोर करते हैं,
कभी चूहे निकल कर

दौड़ने की होड़ करते हैं,
घड़ी घंटे बजाती है।
कि बाक़ी रुक गये सब काम,
स्थिर, गतिहीन, जड़, निस्पन्द
खोकर चेतना बेहोश
साँसें ले रही हैं जान
हो अनजान !

ऊँघते
मज़दूर, पहरेदार, श्रमजीवी
नशे में नींद के ऐसे
कि मानों संगिनी रह-रह बुलाती
कर सतत संकेत
होने बाँह में आबद्ध
मन से, देह से
चुपचाप एकाकार लय होने
शिथिल !
स्वप्न से फिर जाग
अपने पर हँसी
आ खेल जाती है !
कि ऐसी भूल भी कैसी
सदा जो भूल जाती है !

न सीमा है कहीं
बेजोड़ है सारी अनोखी बात,
पर, है सत्य
ठंडी हो रही है रात,
भारी हो रहा अविराम
धुल कर चाँदनी से वात,
ऊपर बन रही है ओस
धुँधली पड़ रही है रात !

यह री कल खुलेगा
रेशमी पट
मुग्ध प्रकृति-वधू का गात !
1948

(47) सुनहरी आभा

छिपा चाँद काले उमड़ते घनों में,
उठी प्रबल झंझा लहरते बनों में !

गरजता गगन है,
हहरता पवन है !

कि कितनी भयानक
अँधेरी-घनेरी अकेली निशा है,
कि कितनी भयानक
हमारे विजन-पंथ की हर दिशा है !

हमें पर उसे भी सरलतम समझकर,
बितानी सबल बन व हँस कर निरन्तर !

नहीं है समय स्वप्न को हम निहारें,
नहीं है समय रूप को हम सँवारें,
नहीं है समय जो कहीं पर रुकें हम,
नहीं है समय साँस ही ले सकें हम,
निरन्तर प्रगति ध्येय होगा हमारा
पहुँचना जहाँ श्रेय होगा हमारा
सबेरा तभी प्रेय होगा हमारा !

उषा की चमकती हुई
लाल किरणें मिलेंगी,
नयी ज्योति ऐसी
कि हिल-हिल

सरल नेह कलियाँ खिलेंगी,
व जीवन हमारा
बदलता चलेगा,
समुन्दर हृदय का
लहरता चलेगा !
कि आभा सुनहरी
नयी सृष्टि सारी,
हमें फिर प्रकृति
नव दमकती दिखेगी,
सुखद भाव सुंदर
चमकती दिखेगी !
1948

(48) प्रभात

रंगीन गगन
ऊँचे पर्वत
घाटी मैदान
कि फैला है सुनसान !
हरे-हरे अगणित पेड़
कतारों में खड़े सघन
हिलते पल्लव
प्रतिक्षण-प्रतिपल
बहता शीतल मंद पवन
रंगीन गगन !

मेरा तन
बिस्तर पर लोट लगाता है,
आँखें मीचे
नींद परी को
दूर कहीं से
मौन बुलाता है !
मुन्नी जाग गयी है

कहती जो -
'सुबह हुई
ओ बाबूजी, उठो-उठो !'
1948

(49) ज्वार भर आया

नदी में ज्वार भर आया !
प्रलय हिल्लोल ऊँची
व्योम का मुख चूमने प्रतिपल
उठी बढ़ कर,
किनारे टूटते जाते
शिलाएँ बह रही हैं साथ,
भू को काटती गहरी बनातीं
तीव्र गति से दौड़ती जातीं
अमित लहरें
नहीं हो शांत
आकर एक के उपरांत !
भर-भर बह रही सरिता
कि मानों लिख रहा कवि
वेग से कविता !
बुलाता क्रांति की घड़ियाँ,
भयंकर नाश का सामान
जन-विद्रोह
भीषण आग,
भावावेश-गति ले
ज्वार भर आया !
नदी में ज्वार भर आया !
1948

(50) ज़िन्दगी

ज़िन्दगी -
एक ढर्रे की बनी,
हर घड़ी अभिशापिनी,
सदियों-सी बड़ी
किस काम की
जब नहीं है सनसनी ?

एकरस औ' एक स्वर
गूँजता प्रत्येक घर !

बोझ से जीवन हुआ भारी
क्या यही है युक्त तैयारी ?
कि धारा राह में ठहरी
व छायी भूत-सी
इस छोर से उस छोर तक
सुनसान-सी बीहड़ उदासी
मौत की गहरी;
कि फैली है
हृदय में रे
सड़ी-सी लाश की बदबू,
कि गन्दगी ऐसी
कि सारी ज़िन्दगी दूभर
रुक गयी थककर !
नहीं है
आज की यह ज़िन्दगी
इन्सान की अपनी सगी !
छिः, यह ज़िन्दगी !
1948

(51) शिशिर प्रभंजन

शीत ऋतु
तलवार की कटु धार-सा
चलता पवन !
निर्जन गगन में
घन कहीं कड़का,
कहीं पर काँपती करका !
सघन तम,
बरसता है मेह
दलदल राह में
चंचल बड़े जल-स्रोत
सारे खेत हैं जल-मग्न !

कुटियाँ भग्न-खंडित,
थरथराता वायुमंडल
विश्व-प्रांगण मध्य हलचल -
गाय बकरी भैंस - पशु,
जन - वृद्ध, शिशु, रोगी, तरुण,
भू तरल पर
पेट में घुटने गड़ाये
सिहरते
केश भूतों-से बिखेरे
वेष भिक्षुक-सा बनाये
काटते भीषण अभावों की
करुण युग-रात्रि क्षण-क्षण,
सह रहे बर्बर-नरक सम यातनाएँ !
दुःख दाहक पा कभी रोते
कृशित-तन नग्न मरणासन्न शिशु
तब विश्व की
दुर्गन्ध सारी गंदगी से युक्त
आँचल को उठा कर

शुष्क स्तन पर नारियाँ
शोषण करातीं खून का !

है क्या यही विद्रोह की स्थिति ?
भर गया अब
कष्ट के दुर्दम पवन से
क्रूरता अन्याय का बैलून !
निश्चय -
पास है विस्फोट का क्षण,
दे रहा प्रति पल

यही संकेत !
आवाहन
जगत में क्रांति का अब
हो रहा मुखरित निरंतर !
चल पड़ी है
दूर से आँधी भयंकर
जन-विजय की कामना भर !

बेड़ियाँ परतंत्रता की
और कड़ियाँ हर तरह की
झनझनातीं टूटने को,
हर दमित अब छूटने को !
दे रहा दृढ़ स्वर सुनायी
मुक्त नवयुग के प्रखर संदेश का,
है प्रतिचरण
नव क्रांति-पथ पर
नव-सृजन की नींव का
मज़बूत पत्थर !
चल रहा क्रम
भ्रम न किंचित
गिर रहा आकाश से हिम,

आ रहा देता निमंत्रण
शीत का सन्-सन् प्रभंजन !
1947

(52) नया विश्वास

बर्फ़ की इन आँधियों में
आश की चिनगारियाँ कब तक जलेंगी ?
चिनगारियाँ :
जिन पर रहीं बिछ
राख की परतें जलीं !
रे और कब तक
उर-सुलगती ज्वाल जीवन की रहेगी ?
काँपतीं रवि-रश्मियाँ नभ से चलीं,
अति शीत लहरों से
रही घिर रात जीवन की घनी !

रात -
जो बढ़ती गयी प्रतिपल
सती उस द्रौपदी के चीर-सी;
बात ठंडी है सभी
हिम-नीर-सी !

विश्वास -
पीले पत्र-सा
रे झुक गया है हार कर,
अब और कब-तक व्योम की छत
प्राण की रक्षा करेगी ?
ओट आँचल की कहाँ तक
मत्त तूफ़ानी घड़ी में
दीप अन्तर का बचाये रह सकेगी ?
बुझ न जाये;
क्योंकि बाक़ी है

अभी तो स्नेह,
क्या वह स्नेह
यों ही व्यर्थ जाएगा ?

नहीं !
अविरल जलेगा वह
प्रलय तक
और अंतिम बूँद तक,
हर श्वास तक,
जग उलझनों में !
दीप जीवन का प्रखर
हर क्षण
रखेगा ज्योति में डूबा हुआ !

चिनगारियाँ हैं :
बर्फ़ से - हिम नीर से
ये बुझ न पाएंगी कभी,
आँधियों से तो
जलेंगी और ऊँची बन
गगन में तीव्र लपटों-सी !
न सोचो -
दीप यह यों ही बुझेगा,
न सोचो -
थक गया है
ज्वार सागर का उमड़ता;
देख लेना
कल उठेगा बाँधने को व्योम को फिर !
क्योंकि
मेरी बाहुओं में
शक्ति बनती और बढ़ती जा रही है,
क्योंकि
अंतर-बल सतत

आती हुई हर साँस पर बेचैन है !
रह-रह
नया विश्वास जीवन में
उभरता जा रहा है !
बर्फ़ की इन आँधियों में
आदमी
बेख़ौफ़ सरगम गा रहा है !
1948

(53) चाह

मेरी भावनाओं की अगर तसवीर बन जाये
तो खुशहाल; उजड़े विश्व की तक़दीर बन जाये !

फूलों से मुहब्बत की, बहुत चाहा खिले उपवन
पर, पतझर-विजन की धूल में आया कहाँ जीवन ?

मंगल कल्पनाओं में ग्रहण धुँधला समाया जो,
नूतन धारणाओं पर पुराना ज़ंग छाया जो,

कर अवरुद्ध मेरी ज़िन्दगी की राह, बन पत्थर
काले रंग जैसा दूर सूने व्योम में भर-भर,

मुझको रोक, जाने क्या नयन में घोल देता है,
'हो सरहद्द में मेरी'कभी यह बोल लेता है !

अभिनव रोशनी का सनसनाता तीर आ जाये
तो युग-वेदना में हर्ष सुख का नीर आ जाये !

मेरी भावनाओं की अगर तसवीर बन जाये
तो खुशहाल; उजड़े विश्व की तक़दीर बन जाये !
1948

(54) धूल-श्री

सौंफिया हरी-हरी
डाल-डाल आज री भरी !

हज़ार लाख बेशुमार
हिल रहीं कतार पर कतार,
पा पवन दुलार-प्यार
सन-सनन उठी पुकार,
भर नया उभार
री उतर रही सरल युवा परी !
सौंफिया हरी-हरी
डाल-डाल आज री भरी !
मंद रंग लाल-लाल
व्योम की विशाल गाल पर गुलाल,
आज रस भरी डँगाल
है किये सिँगार,
देखभाल कर सँवार पत्र-जाल
री सुहावनी हरीत चूनरी !
सौंफिया हरी-हरी
डाल-डाल आज री भरी !
1948

(55) ध्वंस और सृष्टि

ध्वंस की आँधी चली है,
मौत की घंटी बजी है !
चीत्कारें
दुख भरी व्याकुल पुकारें !
रक्त की नदियाँ;
बहीं बन लाश की लड़ियाँ भयंकर !
नाश की घड़ियाँ गरजती आ रही हैं !
विश्व के भू-खंड के प्रत्येक कण-कण से

जहाँ भी टारनेडो-वेग भर
ज्वाला बढ़ी है;
और आगे साध साधे
क्रूर बढ़ती जा रही है
दृश्य पुनरावृत्ति !
अग्नि की धू-धू शिखाओं से
जली है पूर्ण मानवता !
कि गूँजा जग कराहों से
कि चीखे जन -
'बचाओ रे, बचाओ रे !
प्रलय की अग्नि से आहत
मरण की कल्पना से डर
प्रखर स्वर बोलते करुणा भरे -
'हा, हा बचाओ रे !'

कि गरजे ज़ोर से बादल,
कि बरसे ज़ोर से बादल,
जगत में मच रही हलचल !

नयी दुनिया
बनाएंगे, बसाएंगे !
उजड़ती बस्तियाँ हैं तो
उजड़ने दो,
नये युग के लिए
बलिदान होने दो !
अशिव कर दूर - दानवता मिटा,
फिर से
नयी दुनिया बसाएंगे !
नया भूतल उठाएंगे !
बहा देंगे
समुन्दर प्रेम का,
समता, प्रगति, स्वातंत्र्य का चहुँ ओर !

आये मेघ जीवन के
गरजते घोर !
1947

(56) मेरे हिन्द की संतान

मेरे हिन्द की संतान !
तेरे नेत्र हों द्युतिमान
तेरे मुक्त, बल से युक्त,
विद्युत से चरण गतिमान !
मेरे हिन्द की संतान !

भूखी नग्न शोषित त्रस्त
तेरी भग्न जर्जर देह नत
प्राचीनता के
डगमगाते जीर्ण चरणों पर,
कि हालत आज है बेहद बुरी
मानो कसाई की छुरी से चोट खा
बेचैन हो चिल्ला उठा बकरा,
दमित यह सर्वहारा वर्ग
कितना रे गया गुज़रा !
करोड़ों मूक श्रमजीवी
उठो,
प्रतिशोध लो नूतन सवेरे में,
तुम्हारे देश के
उन्मुक्त विस्तृत वायुमंडल में
नयी किरणें
लगीं गिरने !
कि मुट्ठी बाँध कर गाओ
नया स्वाधीनता का गान !
मेरे हिन्द की संतान !

हर सोया हुआ इन्सान

करवट ले उठा,
जागा,
कि जिसको आततायी देख
उलटे पैर ले भागा,
जगे हैं सिंह निद्रा से !
मिटा पापी अँधेरा अब।

'ठहर जा ओ अरे हिंसक !
कुचलता हूँ
अभी मैं शीश यह तेरा,
कि बस अब डाल दो घेरा !'
सभी ने यों पुकारा है !

करोड़ों के चरण फौलाद-से
अन्याय की चट्टान से जूझे,
किसी को आज क्या सूझे ?
असत् सत् का
चमक तम का
हुआ अभियान !
खड़ी हो जा
गठीली स्वस्थ फैली मुक्त छाती तान !
मेरे हिन्द की संतान !
1947

(57) स्नेह की वर्षा

मेरे स्नेह की वर्षा !
नहा लो
त्रस्त प्राणों के उबलते ज्वार,
कर लो शांत जीवन के
धधकते लाल सब अंगार !
मेरे प्यार की वर्षा !

घुमड़ कर हिन्द सागर से
सजल बादल
घिरे नभ के किनारों तक,
बढ़े शीतल पवन के साथ
करने शक्ति भर दृढ़ वार,
ऊँचे दुःख से निर्मित
हिमालय से बने पर्वत !
अभागे देश के ऊपर
कि मूसलधार जल-वर्षा !
नहा लो
त्रस्त प्राणों के उबलते ज्वार,
मेरे स्नेह की वर्षा !

उठी हैं अग्नि की लपटें प्रखर
है सिन्धु-गंगा भूमि उर्वर
बंग श्यामल कुंतला धरणी
झुलस आहत
गगन से याचना कर आज
जीवन माँगती है
नाश-सीमा पर खड़ी होकर !
तुम्हारे बिन्दु दो केवल
हिला शव को जगा देंगे,
बरस लो आज
देकर पूर्ण अपने स्नेह-कण
निर्मल, सजल, कोमल !
सरल अनुराग की वर्षा !
कि मूसलधार जल-वर्षा !
नहा लो
आज जीवन के
मलिन सब भाव धो डालो !
युगों से त्रस्त
पीड़ा ग्रस्त

मेरे देश के मानव !
सहे तुमने
अनेकों युग दमन के,
वेदना निर्मम जलन के,
आग में झोंके गये
तृण से जले,
अपमान क्या ?
सब लूट कर भी ले गये
कटु आततायी क्रूर,
हँसते व्यंग्य से हो दूर !
जिनने कर दिया है
देश की प्रत्येक जर्जर झोंपड़ी का
चोट से प्रति अंग चकनाचूर !
मेरे स्नेह की वर्षा,
नहा लो
त्रस्त प्राणों के उबलते ज्वार !
मेरे प्यार की वर्षा,
मेरे स्नेह की वर्षा !
1948

(58) बदलो!

अपने पथ को बदलो,
बदलो !

चिर-प्राचीन विषम
मग के प्रेमी
विश्वासी
रूढि-ग्रस्त,
बदलो
अपने पथ को बदलो !

अभ्यस्त चरण

बढ़ जाते हैं राह बनी पर
भेड़ सरीखे,
नूतन-पथ का आज सुनो
नव आवाहन,
जीवन का स्वर !
उन्नति प्रगति निरन्तर,
निर्भय सुदृढ़ अथक
अपराजित !

बदलो
अपने पथ को बदलो !
1948

(59) जन-रव

आलोकित विस्तृत जन पथ !
खड़े हुए विद्युत-गतिमय
युग के जिस पर नूतन रथ !
प्रस्तुत,
शक्ति सुसज्जित !
मन्वन्तर कर
नव संस्कृति निर्मिति हित।
प्रेरक स्वर
उन्मुक्त प्रखर अविजित,
गूँज रहा जन-रव
जन पथ पर जन-रव !

मानव -
दुर्दम इस्पाती अडिग सबल
चरणों के बल
क़दम-क़दम पर
दे नव-आवाहन

चीर रहा छाये
उच्छृंखल अर्थ-व्यवस्था के घन।
उपचार समाजी घावों का कर,
परिवर्तित आनन्दित
वसुधा को कर !
सुख-सम्पन्न सभी
धन-अन्न समस्त जनों को दे,
करने प्रतिपादित
नयी सभ्यता, दर्शन अभिनव।
जनयुग का
संयमित सबल जन-रव !
1948

(60) पहली बार

विश्व के इतिहास में
जनता सबल बन
आज पहली बार जागी है,
कि पहली बार बाग़ी है !

पुरानी लीक से हटकर
बड़ी मज़बूत चट्टानी रुकावट का
प्रबलतम धार से कर सामना डट कर,
विरल निर्जन कँटीली भूमि पथरीली
विलग कर, पार कर
जन-धार उतरी
मानवी जीवन धरातल पर
सहज अनुभूति अंतस-प्रेरणा बल पर !

कि पहली बार छायी हैं
लताएँ रंग-विरँगी ये
कि जिनकी डालियों पर
देश की संकीर्ण रेखाएँ

सभी तो आज धुँधली हैं !
क्योंकि
अंतर में सभी के
एक से ही दर्द की
व्याकुल दहकती लाल चिनगारी
नवीना सृष्टि रचने की प्रलयकारी !

क़दम की एकता यह आज पहली है,
तभी तो हर विरोधी चोट सह ली है !

गुज़र गये हैं
हहरते क्रुद्ध भीषण अग्नि के तूफ़ान
जिनका था नहीं अनुमान
सभी के स्वत्व के संघर्ष में युग-व्यस्त
भावी वर्ष-सम साधक
भुवन प्रत्येक जन-अधिकार का रक्षक !

केलीफ़ोर्निया की मृत्यु-घाटी से,
कलाहारी, सहारा, हब्स, टण्ड्रा से
मिटी अज्ञान की गहरी निशा,
ज्योतित नये आलोक से रे हर दिशा !
निर्माण हित उन्मुख जगत जनता

विविध रूपा
विविध समुदाय
बैठा अब नहीं निरुपाय
उसको मिल गया
सुख-स्वर्ग का नव मंत्र
मुक्त स्वतंत्र !

उसका विश्व सारा आज अपना है,
नहीं उसके लिए कोई पराया, दूर सपना है !

युगान्तर पूर्व युग-जीवन विसर्जन
दृढ़ अटल विश्वास के सम्मुख सभी
अन्याय पोषित भावनाओं का
हुआ अविलम्ब निर्वासन !

बुझते दीप फिर से आज जलते हैं,
कि युग के स्नेह को पाकर
लहर कर मुक्त बलते हैं !

सघन जीवन-निशा विद्युत लिये
मानों अँधेरे में बटोही जा रहा हो टॉर्च ले
जब-जब करें डगमग चरण
तब-तब करे जगमग
उभरता लोक-जीवन मग !

कल्मष नष्ट,
पथ से भ्रष्ट!

दूर कर आतंक
नहीं हो नृप न कोई रंक !

अभी तक जो रहे युग-युग उपेक्षित
वे सँभल कर सुन रहे
विद्रोह की ललकार !

पहली बार है संसार का इतना बड़ा विस्तार,
कि पहली बार इतनी आज कुर्बानी अपार !
1948